

राज पब्लिशिंग हाउस

9/5123, पुराना सीलमपुर पूर्व-दिल्ली-110031

बड़े बाबू का रथ



व्यंगकार : श्री सुरेश कुमार शर्मा

© प्रकाशकाधीन

बड़े बाबू का रथ / लेखक : श्री सुरेश कुमार शर्मा / प्रकाशक : राज
पब्लिशिंग हाऊस, 9/5123, पुराना सीलमपुर पूर्व, दिल्ली-110031/
प्रथमावृत्ति : 1988 / मुद्रक : मनोज प्रिंटर्स, 9/2757, कैलाश नगर,
दिल्ली-110031 मूल्य पच्चीस रुपये मात्र

BARAY BABU KA RATH : A Collection of Satires

By

Shri Suresh Kumar Sharma

Price Rs. 25/-

● लेखक की आगामी कृतियों का व्यौरा

आशुतोष

प्रेम की दुकान पर एक दिन एक नया हम्माल ठेला लेकर आता है। सौलह-सत्रह वर्ष का भोला-भाला युवक। वह एक क्विंटल की बोरी क्या उठा सकेगा यह सोच प्रेम उसे अपने घर पर हल्का-फुल्का काम करने के लिए रख लेता है। गोपाल नाम था इस लड़के का।

गोपाल का मुख भोला-भाला था उस पर प्रेम को दया आई। प्रेम की माँ को और प्रेम की पत्नी, शारदा को भी। शारदा और गोपाल में एक अव्यक्त प्रेम की धार बह चली। जब गोपाल को मालूम हुआ कि शारदा और प्रेम को ईश्वर ने अपार सम्पदा दी है परन्तु.....सन्तान नहीं दी तो वह भी सुबह शाम ईश्वर से यही प्रार्थना करने लगा कि उसके मालिक के घर में दीपक जगमगा दो।

गोपाल पर राधा भी मन हार गई थी। बहुत सुन्दर और चंचल थी राधा। वह गोपाल पर रीझ गई थी।

प्रेम की भाभी चाहती थी कि प्रेम उसकी ननद से विवाह कर ले क्योंकि शारदा कभी मा नहीं बन सकती, लेकिन प्रेम जानता था कि वास्तविकता क्या है? उसने एक डाक्टर से परामर्श लिया था पर डाक्टर ने भी उसे ही असमर्थ घोषित किया था।

कस्मे में एक योगीराज आते हैं वे नगर के अंतिम छोर पर स्थित एक मन्दिर में डेरा लगाते हैं। उन्होंने घोषणा की कि उनके गुरु ने उन्हें आदेश दिया है कि तुम जाकर इस नगर में रहो। मैं अब बहुत शीघ्र प्राण त्याग कर किसी सत्पुरुष के घर में जन्म लूंगा।

शारदा की सास और गोपाल भी योगीराज के पास शारदा को लाते हैं। प्रेम का विश्वास इन बातों में नहीं रहा था। योगीराज शारदा को देखकर ठगे रह जाते हैं। योगीराज का प्रेम के घर आना-जाना बढ़ जाता है। एक दिन योगीराज के आशीर्वाद से शारदा गर्भवती होती है।

मुद्दिन आता है प्रेम की पत्नी को बच्चा होता है । गोपाल नंगे पांव योगीराज के पास जाता है पर तब तक पता लगता है कि योगीराज वहां से करीब 85 किलोमीटर दूर दूमेरे शहर में जा चुके हैं ।

आस्था और श्रद्धा का पुतला गोपाल उमी दिशा में भूता-व्यासा चल देता है । इधर प्रेम के घर में हर्ष का वातावरण था कि पता चलता है बहुमूल्य आभूषण का डिब्बा लेकर कोई चला गया है ।

पुलिस में गोपाल के नाम रिपोर्ट होती है । गोपाल को ठीक उस समय जबकि वह योगीराज के आश्रम से एक किलोमीटर दूर था इंस्पेक्टर रजाक पकड़ लेता है । उसे जीप में बिठाकर वह ले जाने लगता है तो गोपाल उससे प्रार्थना करता है कि मैंने नंगे पैर योगीराज तक आने का सकल्प किया था मुझे उनके दर्शन कर लेने दो । इयूटी पर सैनात मुस्लिम इंस्पेक्टर दुविधा में पड़ जाता है ?.....

विषपायी

शिव एक बिना मां का बच्चा था । उसे उसके मौसी-मौसा ने अपने घर में दारण दी । एक मिस्त्री की दुकान पर काम करने लगा । मिस्त्री की लड़की भीना से मन ही मन प्रेम करने लगा ।

भीना बचत शोख लड़की थी, उसकी सगाई भी हो चुकी थी परन्तु उसकी प्रेमलीला के चर्चों जब भावी ससुराल में पहुंचे तो सगाई टूट गई । ले दे कर भीना की छोटी बहन की शादी उसी घर में हो गई ।

भीना के माता-पिता भीना से तंग आ गए । उसकी दीदी के पास भीना को भेज दिया जाता है । माता-पिता का विचार था कि भीना की जीजी और जीजा उसके लिए योग्य बर दूढ़ लेंगे परन्तु भीना को वे घर की नौकरानी बना कर रख देते हैं । बार-बार जब व्यग्र माता-पिता भीना की शादी के बारे में बात करते हैं तो जीजाजी यहा भी भीना का दोष बताते हैं । भीना का पिता अपनी वेटी से इतना दुखी हो जाता है कि वह चाहने लगा लड़की मर जाए तो भली ।

शिव एक अन्य स्थान पर अच्छी नौकरी करने लगा। मीना के निराश पिता उसी से मीना की सगाई करने के लिए तैयार हो गये। लेकिन अब शिव मिस्त्री की दुकान पर भाँड़ू लगाने वाला नौकर न था। कभी वह मीना की उंगलियाँ छूने को लालायित था इस समय जब विवाह का प्रस्ताव उसके सामने आया तो सहजता से इसे स्वीकार नहीं कर सका।

मीना के पिता को बहुत शोभ होता है। अपनी लाड़ली का सम्बन्ध दुकान के पुराने नौकर से करने के लिए वह विवश था पर वहा से भी अस्वीकृति मिली तो उसे बहुत शोभ हुआ।

मीना इन सब बातों को जान रही थी... उसके मन और मस्तिष्क में मंथन हो रहा था। आयु के नाजुक दौर में उसकी शरारतें और शोखियाँ परिवार वालों की दृष्टि में चरित्रहीनता बन गई। स्वार्थी जीजाजी परिवार की कुंठा और निराशा का शोषण करने के लिए मीना को कपड़े और रोटी के बदले में बंधुआ बना साए और.....हां शिव ने भी तो उसे गलत ही समझा।

मीना अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए कुछ करने का निश्चय करके घर से निकली। उसके पिता बदनामी के डर से पुलिस में रिपोर्ट लिखाने या न लिखाने की दुविधा में कुछ न कर सके। मीना को कठिनाई भी हुई, ठोकरें भी मिली, पर वह न किसी चकले में बँठी न रेल की पटरी पर गई।

मेरी यह रचना ऐसी ही एक साधारण लड़की की कहानी है जो कुछ भूल करने के कारण घरवालों की दृष्टि से गिर गयी।

वह अपने बारे में सही परिप्रेक्ष्य में सोचने लगी इसलिए आत्म-निर्ममता की ओर उन्मुख हुई। समाज में युवती को स्थापित होने में बहुत-सी असफलता और कटु अनुभवों से गुजरना पड़ता है कुछ उसमें वह जाती है मीना जैसी लड़कियाँ सम्मल जाती हैं।

कथानाक में मौलिकता का दावा नहीं परन्तु प्रस्तुतीकरण में रोचक और पठनीय सामग्री का अभाव भी नहीं है। अनावश्यक योनाचार प्रसंगों का स्थान नहीं परन्तु प्रेम और सौंदर्य का रस भी है।

—सुरेश कुमार शर्मा

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ
1. वादो की वादी	... 9
2. पुलिस-प्रेस की प्रेम कथा	... 13
3. बड़े बाबू का रथ	... 17
4. जोड़े को कौन तोड़े	... 22
5. मैं महान् नहीं बन सका	... 26
6. ईमानदारी ! ईमानदारी !! ईमानदारी !!!	... 34
7. जल्दी निबटना	... 38
8. बात यू चलती है	... 42
9. भूमिगत	... 47
10. दया दिखावा है	... 51
11. (स) सौर ऊर्जा	... 55
12. शहर दरोगा का विदाई समारोह	... 58
13. त्याग ही त्याग	... 62
14. आए दिन बहार के	... 65
15. पुलिस और तांत्रिक शास्त्र	... 68
16. सीजन किंग	... 71
17. साहित्य की उपेक्षित विधाएं	... 74
18. अधिकारियों के गुप्त भेद	... 78
19. आशियाना डूँढते हैं	... 82
20. कर-कमल	... 86
21. एक गर्मपात और	... 92

वादों की वादी

शीर्षक के भ्रामक होने के लिए क्षमा-याचना । यह कोई प्रेम कथा नहीं है । यहाँवादों से आशय राजनीति-शास्त्र के सिद्धान्तों से है ।

सभी दलों के पास एक वाद है । किसी दल के पास दो भी हैं । (लेनिनवादी-माक्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी) । कभी-कभी दल के अधिकांश नेताओं को पता भी नहीं चलता कि उनके दल में 'अमुक' वाद जड़ें फैला रहा है—अन्यान्य दल के किसी नेता के वक्तव्य से ही आंखें खुलती हैं । शेखावत से लेकर अडवानी तक किसी को भनक भी नहीं कि भाजपा में नाज़ीवाद या काजीवाद जड़ें जमा चुका है—कोई इका नेता कहता है तब पता चलता है । फिर भी इन सब अपवादों के चलते यह निश्चित है कि राजनीति का प्राणवाद है । खेती से खाद और राजनीति से वाद निकल जायें तो सब वेकार ।

हमारी राष्ट्रीय राजनीति का सबसे भारी-भरकम वाद है—समाजवाद । जब 1947 में साम्राज्यवाद का इंजन अंग्रेज ले गए तो राजनीति की मालगाड़ी को खींचने के लिए नेहरूजी ने समाजवाद का इंजन लगाया । योजनायें बनी, चली, दोड़ी और थककर चूर हो गयी पर समाजवादी समाज की स्थापना न हो सकी । कांग्रेस के बाहर भी कुछ नेताओं ने समाजवाद के आधार पर दलों का गठन, पुनर्गठन, विघटन और विलय किया । डॉक्टर लोहिया से लेकर मनीराम वागड़ी तक कितने ही पहलवान आये और अखाड़े से बाहर होते गए पर समाजवाद को काबू में न कर सके । कारण, शायद यह रहा हो कि नेहरूजी को समाजवाद के 'जेनुइन पार्ट्स' नहीं मिल सके और विपक्ष एक ड्राइवर अनेक की समस्या सदैव बनी रही, इस प्रकार दोनों ओर परिणाम एक से रहे ।

गांधीवाद राजनीति का सबसे मरियन और निरोह वाद है। गांधीवाद पर आधारित कोई प्रमुख राजनीतिक दल नहीं है। फिर भी आवश्यकता पड़ने पर कोई भी दल अपने चुनाव घोषणा-पत्र में गांधी-वाद का उपयोग कर लेता है। गांधीजी की तरह गांधीवाद का जिक्र भी दो अक्टूबर के आम-नाम या फिर चुनाव की बेगमा में होता है। गांधीवाद के अधिक प्रचलित न होने का एक प्रमुख कारण यह भी है कि इसमें रयाग और आदर्श कष्टप्रद बातों पर बहुत जोर दिया जाता है। पूंजीवाद और अधिनायकवाद ऐसे वाद हैं, जिन्हें किसी दल या नेता ने अपने लिए प्रयुक्त नहीं किया। इनका प्रयोग मंदैव दूमरों पर वार करने के लिए किया जाता है। पूंजीवाद को समाचार पत्रों में प्रायः मोरारजी देमाई के विरुद्ध उछाला जाता है। कांग्रेस की निन्दा करने के लिए बड़े-बड़े समाचार पत्र (जो स्वयं पूंजीपतियों द्वारा प्रकाशित होते हैं) पूंजीवादी नीतियों को आड़े हाथों लेते हैं। कुछ वाद के लक्षण इतने अणु रूप में होते हैं कि उन्हें हर कोई नहीं देख पाता। जयप्रकाश नारायण के पास एक दूरबीन थी, उन्होंने इन्दिराजी की नीतियों में अधिनायकवाद के जीवाणु देखे और सोने वालों को जगाया—अधिनायक-वाद आ रहा है। लोग बिस्तर छोड़ कर भागे और जेल में घुसकर हो दम लिया। वस्तुस्थिति यह है कि लोग अपना घर भर रहे हैं पर पूंजीवाद के विरुद्ध हैं। अधिनायकवाद का अस्तित्व भी राजनीति में है, पर क्या कांग्रेसी और क्या विरोधी सभी अधिनायकवाद को राजनीति के लिए स्याज्य बताते हैं।

हमारे देश की राजनीति में साम्यवाद भी बहुत पुराना वाद है। लेकिन विधटन और पुनर्गठन के कारण साम्यवाद के साथ-साथ भारतीय साम्यवाद, भारतीय मार्क्सवादी साम्यवाद, साम्यवाद लेनिनवादी, मार्क्सवादी आदि वाक्यों में वाद इतने हैं कि पूरी सूची बनाना कठिन है। साम्यवाद को छात्रों और श्रमिकों का समर्थन या रुझान प्राप्त है, इसीलिए भारतवर्ष के कुछ प्रान्तों में साम्यवाद अच्छा 'मारजिन' कमा रहा है। देखा जाए तो राष्ट्रवाद के अलावा सभी वाद अच्छा मारजिन

कमा लेते हैं, केवल राष्ट्रवाद ही इतना विकट निकला कि अपने बन्दों को बरसों के लिए घाटे में डुबो गया। एक जमाना था जब राष्ट्रवाद के दम पर जनसंघ उत्तर भारत में खूब पनपा। जलभुन कर कांग्रेसी और कम्युनिस्ट राष्ट्रवाद को हिन्दूवाद कहते रहे पर जनसंघ हिट होता रहा। लेकिन सन् 1980 में जब जनता पार्टी से पृथक् होकर अटलजी ने अपना 'कमल किराना स्टोर' खोला तो मतदाता को राष्ट्रवाद याद ही नहीं आया। गांधीवाद भी मिलाया पर यह बाशनी भी पब्लिक को नहीं खींच सकी। आजकल भाजपा का राष्ट्रवाद स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने में लगा है।

लेकिन जिस प्रकार एक शहर में सभी कवियों की गिनती नहीं की जा सकती, उसी प्रकार राजनीति को आलोकित करने वाले सभी वादों का यहाँ उल्लेख नहीं किया जा सकता है। नित नए वाद की स्थापना होती है। वह जमाना और था जब राजनीति में देशप्रेमी स्वतन्त्रता के पुजारी आते थे। स्वतन्त्र भारत में राजनीति में वकील आए, यूनियन लीडर्स आए, पत्रकार आए, यहां तक भी गनीमत थी, पर फिर तिकड़म-वाज, घूर्त राज और स्मगलर सम्राट भी आने लगे तो वाद भी नए-नए आने लगे। क्षेत्रवाद, भाषावाद और जातिवाद देखने-सुनने में आए। फिर अवसरवाद और भाई-भतीजावाद राजनीति के नक्काशखाने में अपने नगाड़े बजाने लगे। आज राजनीति शास्त्र का प्रोफेसर भी नहीं बता सकता कि अवसरवाद को भारतीय राजनीति में किसने प्रथम दिया। (हम भी नहीं बता सकते) इतना अवश्य है कि राजनीति से राज निकल जाय या नीति निकल जाए अथवा दोनों पर वाद नहीं निकल सकता।

नए प्रधानमंत्री मिस्टर क्लीन के आने से वादों की वादी राजनीति में एक नए वाद की सदा गूंजने लगी है—इसे हम चेटेस्ट वाद कह सकते हैं। यह है 'नतीजावाद'। राजीव गांधी नतीजों में विश्वास करते हैं, इसलिए प्रधानमंत्री बनते ही उन्होंने दल-बदल विरोधी निषेध बनाया। पंजाब और आसाम की समस्याओं का हल निकाला। यह सब इसलिए,

सम्भव हो सका, क्योंकि उनको प्रबन्ध विज्ञान की दीक्षा मिलनी है। वे देश को उद्योग की तरह मैनेज करना चाहते हैं। पार्टी और सरकार के मामलों में उनकी दृष्टि एक मैनेजर की भांति पड़ी है, जो उपलब्ध साधनों से निश्चित अवधि में एक सुनियोजित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए माल, मशीन और मजदूर को लगाता है। यह सब अभी प्रधानमंत्री कर रहे हैं, फिर प्रदेश स्तर पर मुख्यमंत्रियों को भी प्रशिक्षण दिया जायेगा। अब संगठन के पदों पर मैनेजमेन्ट साइंस के डिग्री और डिप्लोमा होल्डरों को प्राथमिकता दी जायेगी। अब समस्या विपक्ष की है जहाँ सदैव दक्षिणानुमी दृष्टिकोण और प्रतिक्रियावादी सोच व्याप्त रहा। 60 से 80 साल तक के पुराने मॉडल विपक्षी दलों की कुत्तियों पर जमे हैं। देखने वाली बात यह है कि नतीजावाद को वे अपने दल में कैसे जोड़ेंगे। हो सकता है चौधरी और अटलजी पत्राचार पाठ्यक्रम से मैनेजमेन्ट का डिप्लोमा कर लें या रोजगार समाचार में हमें लोकदल, ज.पा., और भाजपा की ओर से 'पार्टी के सचिव पदों' के लिए 'एम. बी. ए. स्नातकों की आवश्यकता' शीर्षक वाले विज्ञापन देखने को मिलें। यह सब इसी दशक में होगा। क्योंकि प्रधानमंत्री का जादू घस निकला है। इस जादू को जादू से ही कम किया जा सकता है। आज राजनीति में मैनेजमेन्ट साइंस ने खलबली मचा दी है। इस काम को हथकण्डेबाज यूनिजन लीडर्स, जुगाड़ी पत्रकार या सिने-कलाकार नहीं कर सकता। एक प्रबन्ध स्नातक कर सकता है। देश को नतीजावाद सिद्धान्त से मैनेज करने के लिए अब विपक्ष को भी मैनेजमेन्ट ट्रैनीज अपने दलों में लेने होंगे। अब नतीजावाद की कला काम नहीं आयेगी। □

पुलिस प्रेस की प्रेम कथा

प्रजातन्त्र में पुलिस और प्रेस के सम्बन्ध का बड़ा सम्बन्ध है। तीनों कन्या राशि हैं। एक ही राशि के जातक होने पर भी पुलिस और प्रेस के सम्बन्धों में प्रेम कथा का माधुर्य नहीं अपितु स्टण्ट फिल्म की 'डिगडांग' अधिक है। लगभग सालभर पहले ज़िले के प्रमुख कस्बे में सरेबाज़ार दिवाली की रात थानेदार और कांस्टेबलों द्वारा एक पत्रकार को पीटने का समाचार पढ़कर साधारण नागरिक को आश्चर्य एवं परम विस्मय हुआ। विस्मय इसलिए कि पुलिस तो सड़क पर आवारा धूमने वाले पशुओं की पूछ भी नहीं मरोड़ती फिर पत्रकार को क्यों पीटा। तब से साधारण नागरिक ने पुलिस और प्रेस के सम्बन्धों पर गहरा अध्ययन और मनन किया। फलस्वरूप जो निष्कर्ष प्राप्त हुआ, वह यही है कि पुलिस और प्रेस (अर्थात् लोकल पुलिस और लोकल प्रेस) के सम्बन्धों को मधुर या कटु बनाना प्रेस पर निर्भर है। पुलिस स्वभाव से ही शालीन और अनुशासित है। इसका रहन-सहन, खान-पान और चाल-चलन सब कुछ मर्यादित है। साधारण नागरिक को दैनिक जीवन में पता भी नहीं चलता कि आस-पास या दूर-दूर तक पुलिस नामक संस्था है भी या नहीं। प्रेस ही साधारण नागरिक को बताती है कि पुलिस है। अकर्मण्य है। भ्रष्टाचार में लिप्त है। पुलिस को भी तभी पता लगता है, यर्ना अपने होने की खबर खुद पुलिस को भी नहीं होती।

स्थिति यह है कि कोई प्रतिबद्ध या निष्ठावान पत्रकार जब किसी पुलिस कर्मचारी द्वारा रिश्तत लेने की खबर को सुनियो में छापता है, (या छपवाता है) तब पुलिस अधीक्षक (जी) को पता लगता है कि अच्छा ! अमुक कर्मचारी (भी) रिश्तत लेने लगा ! अब क्योंकि (अकेले) रिश्तत खाने से पुलिसकर्मियों का पावन-संस्थान बिगड़ जाता है, इसलिए

पुलिस अधीक्षक उक्त कर्मचारी को 'पथ्य' करवाने के लिए अविलम्ब लाईन हाजिर कर देते हैं। हां ! यदि अधीक्षक महोदय उक्त कर्मचारी के 'मजबूत हाजमे' के प्रति आश्चर्य हो तो इस प्रकार की कोई कार्यवाही नहीं की जाती है। इस पर प्रतिबद्ध पत्रकार को गैस बनने लगती है, और वह दुबारा इसी समाचार को छापता है। तब तक कोई फुरसतिया लोकल नेता भी सुर में सुर मिलाकर जापन देने पहुँच जाता है। तब उदारमना अधीक्षक महोदय रिश्तत लेने वाले अभियोगी कर्मचारी को सस्पेंड करके पथ्य करने के लिए बाध्य कर देते हैं। जितना उदारमना और सहिष्णु पुलिस अधीक्षक होता है, उससे भाषा भी उदारमना और सहिष्णु यदि लोकल पेपर का प्रधान सम्पादक हो तो प्रजातन्त्र की रक्षा होती रहती है और पुलिस बनाम पत्रकार की 'डिंगडांग' नहीं होती। कतिपय मामलों में पाया गया है कि प्रधान सम्पादक पुलिस की अकर्मण्यता या भ्रष्टाचार में लिप्त होने की खबरों को अपने पत्र में स्थान देने को उत्सुक न होकर केवल सरकारी, अर्द्ध सरकारी या नितांत असरकारी विज्ञापन समग्र में व्यस्त रहता है। इसके लिए अधिकारियों की सेवा, निष्ठा और कर्तव्य-पालन के सचित्र विवरण या व्यापारियों के बच्चों की शादी या मातृ-शोक, पितृ-शोक और मुनीम-शोक के समाचार तत्परता से प्रकाशित करता है। ऐसे जीनियस पत्रकारों को सरकारी प्रदर्शनियों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों के निमंत्रण पत्र तथा प्रीतिभोज समारोह के निमंत्रण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। और विज्ञापन ! इनके पत्र का कोई अंक बिना सरकारी नीलामी सूचना या निविदा विज्ञापन के नहीं निकलता। प्रेस से सीधी सड़क बेधड़क कागज की धैली बनाने वाले कवाड़ी की दुकान पर पहुँचता है। पुलिस का दरोगा या 'सिपैया' ऐसे समाचार पत्रों के पत्रकार नया प्रूफरीडर को भी नहीं रोकते।

असल में हमारी सरकार शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की जिस नीति को अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर प्रचारित करती है, पुलिस स्थानीय स्तर पर उसे धरितार्थ करने में सतत प्रयत्नशील है। व्यापारियों, अधिकारियों और सट्टा सम्राटों से लेकर धटिया उच्चकोई तक से पुलिस के मधुर सम्बन्ध

हैं। स्नेक्सवार वाला उबले अण्डों से लेकर दारू बेचता है, पुलिस को बदवू नहीं आती। मिनी बस वाले सवारियों को भेड़-बकरियों की तरह भरकर चलते हैं, पर ट्रैफिक पुलिस के 'नयन सुतों' को नज़र नहीं आते। चौराहे पर चाकू चलते हों, बस्तियों में चोरियां बढ़ती जायें, दूसरे अन्य उत्पात होते रहें—पुलिस मर्यादा-पुरुषोत्तम की तरह अपनी शांत मुद्रा भंग नहीं होने देती। तब विज्ञापन अभाव से प्रसित लोकल दैनिक या आकस्मिक पत्र के मुख पृष्ठ पर प्रतिवद्ध पत्रकार पूछता है—पुलिस अकर्मण्य क्यों है। भ्रमवश साधारण नागरिक भी सोचने लगता है—पुलिस अकर्मण्य क्यों है। सभी को पुलिस की अकर्मण्यता रहस्यमयी लगती है, जबकि बात सीधी-सी है। पुलिस विभाग का प्रमुख कार्य क्या है—शान्ति बनाए रखना। शान्ति कब बनी रह सकती है, जब पुलिस शान्त रहे। इसीलिए बड़ी-से-बड़ी घटना हो जाए, जब तक ऊपर से दबाव न आए, पुलिस विचलित नहीं होती। पुलिस शान्ति के मूलमंत्र का पालन करती है पर लोकल प्रेस शान्ति में खलबली पैदा करता है।

लोकल प्रेस को सनसनीखेज खबरें छापने की ललक रहती है। विज्ञापन के अभाव में उप-सम्पादक, स्थानीय संवाददाता और स्तम्भ लेखक को 'स्कूपफेबिया' नामक रोग घेर लेता है और वे स्थानीय कवि की तुकबंदी के बजाए भटकेदार खबरें एकत्र करने में जुट जाते हैं। रिपवत, कमीशन तथा अन्य अनियमित तरीकों से पैसा खाने वाले कारनामे लोकल प्रेस में छापने लगते हैं। यहाँ तक पुलिस और प्रेस में कोई द्वन्द्व नहीं। यदा-कदा पुलिस के छोटे कर्मचारी का घोटाला छप जाए तो भी पुलिस को कोई 'फरक नहीं पड़ेगा'। लेकिन जब अचार-घटनियों की विधियाँ छापने वाला पेपर दिल्ली के दिनमान या बम्बई के बिल्डज की तरह सुर्खियों में पुलिस के भ्रष्टाचार का भण्डा फोड़ने लगता है, और किसी थानेदार या अधीक्षक को भी लपेटने लगता है तो इस प्रेम कथा में जबरदस्त मोड़ आ जाता है, और कोई अग्रिय घटना घटती है, जिसे पढ़कर साधारण नागरिक को अपार दुख और परम विस्मय होता है। प्रजातंत्र की आत्मा को पीड़ा होती है।

प्रजातंत्र पुलिस और प्रेस में प्रेम सम्बन्ध चाहता है। साधारण नागरिक भी यही चाहता है। दोनों में समन्वय वांछित है। दोनों के उद्देश्य 'तू भी मैं भी छाऊँ' की सौहार्दपूर्ण नीति पर आधारित होने चाहिए। खाने की मात्रा पर एक-दूसरे से ईर्ष्या नहीं होनी चाहिए। पुलिस को जो 'हफता', 'महीना' या 'नजराना' मिलता है, वही दशहरा-दिवाली विशेषांक में विज्ञापन के रूप में प्रेस को भी मिलता (या मिल सकता) है। पुलिस के सहयोग से कितने ही बन गए, और कितने ही बन रहे हैं। फिर प्रेस क्यों पीछे रहे? सम्बन्ध सुधारने की पहल दोनों ओर से हो। प्रजातंत्र के हितैषी नागरिकों का सुझाव है कि आजकल वृक्षारोपण का दौर है। लोकल प्रेस के सम्पादक जी को धाने में और पुलिस अधीक्षक को स्थानीय पत्र के प्रेस कम्पाउण्ड में आमंत्रित किया जाकर वृक्षारोपण का समारोह करना चाहिए। दशहरा विशेषांक का विमोचन धानेदार जी से कराया जा सकता है। पुलिसकर्मियों का प्रेसकर्मियों से फुटबॉल मैच कराया जा सकता है। गरज ये कि प्रीत करने के लाख उपाय हैं। किसी को भी आजमाया जा सकता है।

स्थानीय पत्र को दिनमान बनने से विज्ञापन नहीं मिलने वाले। पुलिस की मेले में 'प्रशंसनीय व्यवस्था', 'नगर में अपराधों की संख्या में तेज़ी से कमी' आदि समाचारों को देखकर पुलिस के हृदय के तार झनझना जाते हैं, फिर सम्पादक की मिनी बस या नगर सवाददाता के ऑटो रिक्शा की ओर पुलिस की निगाहें उठती हैं, मगर प्यार से। पत्रकार को कभी दरोगा की क्रुपित मुद्रा के दर्शन नहीं होते। प्रजातंत्र में दोनों फलते-फूलते हैं, और हिन्दी फिल्म की तरह इस कथा का भी सुखांत हो सकता है। □

बड़े बाबू का रथ

प्रत्येक फिल्म में एक नायक होता है। प्रत्येक कार्यालय में एक बड़ा बाबू होता है। फिल्मों में नायक प्रायः एक जैसे होते हैं। 'बड़े बाबू' नामक प्राणी दूसरे 'बड़े बाबू' से सर्वथा भिन्न होता है। प्रत्येक बड़े बाबू का मौलिक व्यक्तित्व होता है। निजी संस्कृति होती है। और नितांत गोपनीय इतिहास होता है। जिस कार्यालय में, मैं काम करता हूँ, वहाँ भी बड़े बाबू हैं। मेरे बड़े बाबू किसी भी कार्यालय के बड़े बाबू से उन्नीस नहीं हैं।

वे आज जिस आफिस असिस्टेंट पद पर सोभावमान हैं, उसके लिए मुझ जैसे कितने ही कनिष्ठ और वरिष्ठ लिपिक लपकते हैं, परन्तु स्वयं बड़े बाबू के लिए यह पद कंटकाकीर्ण हो चुका है। अब वे इस पद पर नहीं रहना चाहते, लेकिन पद उन्हें नहीं छोड़ता, अथवा आगे नहीं बढ़ने देता। यह उनकी विडम्बना है। मेरा सौभाग्य है। सौभाग्य इसलिए कि वे इस पद पर नहीं रहे तो अफसर बनने में अथवा बाहर निकाल दिये जायेंगे। दोनों ही अवस्थाओं में मुझे उनके दर्शनों से वंचित रहना पड़ेगा। मैं गत 12 वर्षों से इस सुख को भोग रहा हूँ। मैंने और भी सुख भोगे, पर यह सुख धर्णनातीत है।

उनकी मेज चित्रकूट का घाट है, जहाँ अनेक अथवा सभी चपरासी रूपी सन्त प्रतिदिन एकत्र होकर विभिन्न प्रकार की धर्म चर्चाएं करते हैं। मुह लगे 'सन्त' उनकी उपस्थिति में जर्दा बनाकर फांक लेते हैं। बड़े बाबू स्वयं जर्दा नहीं खाते, वे अन्य बड़े बाबूओं की लीक से हटकर हैं। उक्त 'सन्तगण' उनसे सदा ही श्रृण की अपेक्षा रखते हैं। पात्रता

देखकर बड़े बाबू उन्हें उचित व्याज दर पर ऋण राशि देकर संकट से उबारते हैं, और अपनी छवि बनाते हैं।

उन्हें किसी पदार्थ को पाने के लिए यत्न नहीं करना पड़ता। उनकी गाठ से भी कुछ नहीं जाता। इच्छा मात्र से वांछित पदार्थ उनके समक्ष सन्तगणों द्वारा उपस्थित कर दिया जाता है। बड़े बाबू अपने अतिथियों को कम्पनी के खाते में चाय पिला व स्वयं भी प्राप्त कर अतिथि धर्म का पालन करते हैं। गैस ग्रस्त हो जाने से अब कघौरी आदि राक्षसी व्यंजनों से उन्हें बँराग्य हो गया है।

बड़े बाबू गत सात वर्षों से आफिस असिस्टेन्ट हैं। उनका सम्पूर्ण सेवाकाल पन्द्रह वर्ष का हो चुका है। सेवा के प्रथम आठ वर्षों में उन्होंने 2 पदोन्नतियाँ प्राप्त की और 3 बार विशेष वेतन वृद्धि के पात्र समझे गए। फिर विकास गति का 'त्वरण' कम हो गया। कैरियर रूपी रथ अटक गया। तब से वे मेरी भावभीनी आस्था के पात्र हो गए। मेरी आस्था घनीभूत होती गई। अब वे मेरे लगभग इष्ट बन गए हैं। उनके विषय में मैंने वर्षों चिन्तन किया। इस चिन्तन के फलस्वरूप मुझे कार्यालय नामक सृष्टि के ब्रह्म ज्ञान की चादर का कोना हाथ लगा। मैं समझ गया कि सेवा नियमों की अवहेलना सरकारी और अर्द्ध-सरकारी संस्थानों में भी होती है, यद्यपि वहाँ स्पष्ट और लिखित सेवा नियम होते हैं। निजी संस्थानों में जहाँ कि सेवा नियम प्रायः अस्तित्व में ही नहीं होते, नियुक्ति, पदोन्नति, वेतन-वृद्धि, सेवा-मुक्ति, अथवा सेवा-हरण आदि की सारी कथा और पटकथा प्रबन्ध वर्ग की कृपा दृष्टि पर आधारित होती है। यह कृपा दृष्टि वृत्ताकार होती है। कृपा दृष्टि का यह वृत्त बड़ा मायावी है। अगोचर भी है, लेकिन है ऊँची चीज़। जिस पर यह नहीं टिकता, वह मेरी भाति बारह साल में भी बलकं ही रहता है, जिस पर टिक जाए वह, 'सत् श्री अकाल' न कहे तो भी 'निहाल' हो जाता है। सभी कर्मचारी इस 'प्रभामण्डल' की आकांक्षा रखते हैं। अधिकांश प्रयत्नशील भी रहते हैं। परन्तु कोई परम भाग्यवान

हो इस कृपा दृष्टिवृत में आलोकित हो पाता है। हमारे बड़े बाबू सदैव इस दिशा में प्रयत्नशील रहे हैं।

अपनी सेवा के 'शैशव काल' में वे मात्र डिस्पेंच क्लर्क थे। संपूर्ण 'आगम डाक' में से उन पत्रों को सूँघते, जिनमें किसी 'घोटाले' की कस्तूरी महकती थी, यथा सप्लायरों या ठेकेदारों के तकाजा-पत्र जो बिलों के तीन-तीन महिनों तक भुगतान न होने के सम्बन्ध में होते। इन सुगन्धित पत्र-पुष्पों को वे सम्बन्धित क्रय अधिकारी या लेखाधिकारी के पास न भेजकर मण्डल अधीक्षक के पास भेजते। ऐसा करते रहने से कृपावृत उनकी ओर सरका। वे सीनियर क्लर्क बना दिये गए। अब रिकार्ड सेक्शन भी उनके कार्य-क्षेत्र में आ गया। यहां आने पर वे और भी सक्रिय हुए। समस्त निगम-पत्रों की कार्यालय प्रतिलिपि को वे सूक्ष्म दृष्टि से जाँचने लगे। भार्गव शिक्षनरी सदैव उनके पास रहती। वे वर्ण-विन्यास अशुद्धि ढूँढ़ निकालने की कला में निपुणता प्राप्त करते गए। अशुद्ध वर्ण-विन्यास वाले शब्दों को रेखांकित कर मण्डल प्रबन्धक के पास पैड में लगाकर भेजने से उन्हें सतर्क और सेवानिष्ठ समझा गया। और वे आफिस असिस्टेंट बनाए गए।

यहां पर कथा का इन्टरवेंस हो जाता है। इन्टरवेंस के बाद उनकी कथा बेजान हो जाती है। वे असिस्टेंट बने और सुखी जीवन बिताने लगे, लेकिन सुखी जीवन कोई कब तक बिताए। दो साल सूखे निकल गए। उन्होंने रथ से निकलकर 'तेल-पानी' चंक्र किया। कोई खराबी नज़र नहीं आई। 'किक' भी बराबर लग रही थी, पर गाड़ी स्टार्ट होने का नाम न ले। वे चिन्तित रहने लगे।... 'कृपा-दृष्टिवृत' कहाँ चला गया।

विस्तार सिचाई योजना त्यागकर सघन सिचाई योजना प्रारम्भ की। अपने इमीडिएट बॉस को नाना प्रकार से सुख पहुंचाए, विभिन्न प्रकार के भोग लगाए। रेल का रिजर्वेशन कराया, नल-बिजली का बिल जमा कराया। गाड़ी की यात्रिव दाम पर मरम्मत कराई... शुद्ध दूध

की बन्दी लगाई, पर उनका बॉस भी चिकना धड़ा था। पानी नहीं ठहरा। इन सब इन्जेक्शन और केपसूल से स्थिति में सुधार न होते देख बड़े बाबू ने शल्य-चिकित्सा का आश्रय लिया।

दो अकिंचन लिपिकों के गले पर छुरी भताई। टाईप-राइटर के रिबन चुराने तथा डाक-टिकटों के हिसाब-किताब में धोखाला करने के आरोप में वे दोनों अभाग्य अपनी दुर्गति को प्राप्त हुए। इस प्रकार के आरोप लगाने और सिद्ध करने में हर बड़े बाबू की तरह हमारे बड़े बाबू भी दक्ष हैं। कुछ दिनों कार्यालय में बड़े बाबू के प्रमोशन क्रमांक तीन की बड़ी चर्चा रही पर शनैः-शनैः बात ठण्डी हो गई। अचानक महाप्रबन्धक के कार्यालय सचिव का सितारा चमका। मेरे बड़े बाबू डिस्पेंच तथा रिकार्ड-सेक्शन के क्लर्कों तथा टाइपिंग पूल की समस्त देखियों सहित इस नये मौर परिवार के सत्त्वावधान में आ गए। उपरोक्त अकिंचन दोनों बाबू भी थम न्यायालय से निर्दोष होकर लौट आए। यहां पर क्यों और कैसे, आदि तर्कों का वर्णन व्यर्थ है। जिस प्रकार फिल्मों में संयोग से कुछ भी हो जाता है, निजी संस्थानों में कृपा वृष्टि-वृत्त से वह सब हो जाता है। अब एक प्रासंगिक पलंश बैंक आता है। जब बड़े बाबू मात्र क्लर्क थे, कुछ कर्मचारियों ने स्टाफ-यूनियन का गठन करने के प्रयास किये थे, जिससे कि कर्मचारी समय-समय पर लाभान्वित हों और पदोन्नति, वार्षिक वेतन-वृद्धि या वेतन शृंखला में परिवर्तन आदि के सम्बन्ध में प्रबन्ध वर्ग से स्पष्ट नियम बनाए जाने की बात रखी जा सके। उन दिनों बड़े बाबू का रथ द्रुत गति में था और कृपावृत्त की प्रकाश रश्मियाँ उनको छू रही थी। अतएव उन्होंने ऐसे 'अभिमित' कर्मचारियों के साथ मिलना-जुलना तक छोड़ दिया। बड़े बाबू जैसे उच्चम विचारों के दूसरे कर्मचारियों ने भी कृपावृत्त की परिधि में बने रहने की कामना के बशीभूत होकर यूनियन गठन के प्रयासों को असफल कर दिया। यूनियन आज तक नहीं बनी। परन्तु निष्ठुर कृपा वृत्त भी किसी का सगा नहीं हुआ।

बड़े बाबू आज भी धार पर अड़े हुए हैं। कुछ पाने के लिए वे संघर्ष-

रत हैं, उन्हें आशा भी है। मैं भी कुछ पाना चाहता हूं पर संघर्षरत नहीं हूं, आशा भी नहीं है। इसलिए मैं उन्हें थढ़ा से देखता हूं, वे मुझे चश्मे से देखते हैं। शल्य चिकित्सा पर से अभी उनका विश्वास नहीं गया पर उनके औजार अब जाने क्यों काम नहीं आते। वैकल्पिक व्यवस्था के अन्तर्गत उन्होंने आध्यात्मवाद का आश्रय भी लिया है। 'छोटे देवता जी' से लेकर मोहन टाकीज के आगे बैठने वाले छुटमैये ज्योतिषियों तक को वे अपनी हस्तरेखायें दिखाते रहते हैं। मानस में दी हुई रामाज्ञा-प्रद-शलाखा में भी टटोलते हैं। कभी-कभी कार्यालय में बैठे-बैठे पंचियां डालकर स्वयं ही उठाते हैं, और सम्भावित भविष्य को जानने का प्रयास करते हैं। मन्दिर भी जाते हैं। एक पुष्ट समाचार के अनुसार प्रति सोमवार 'नील-कण्ठ महादेव', मंगलवार को गोदावरीघाट के बालाजी, और शुक्रवार को कैंपूनीपोल में सन्तोपी मां के मन्दिर निरन्तर चार वरों से जा रहे हैं। बुधवार को इस आयु में भी 'सिबाका-नीत-माला' के लिए बुक रहते हैं। बाकी दिनों का पता नहीं चलता। इन पंक्तियों के लिखने तक उनका रथ मथावत् खड़ा है। □

जोड़े को कौन तोड़े

युजुर्ग कहते हैं कि कुदरत ने हर सजा का जोड़ा बनाया है। रात और दिन, धूप और छाया, नर और मादा, कम और ज्यादा। फिर भी जब जोड़ा सामने आता है तो लोगो की नजर में खटकने लगता है। दिलीप कुमार और वैजयन्ती माला की जोड़ी जमने लगी तो राज कपूर बीच में आ गए। ओ. पी. नैयर और आशा भोंसले की जोड़ी में राहुलदेव बर्मन टपक पड़े। फिर भी जोड़ा या जोड़ी बनना फिल्मों में अभी भी जारी है। और फिल्म ही क्यों, साहित्य में आ जाइये। काका हाथरसी और बैरागी या नीरज और कुमार शिव की जोड़ी क्या किसी से छिपी है।

वैसे देखा जाए तो जोड़ी में लाभ अधिक हैं, हानि कम। सड़क पर घूमने वाले हमारे क्षेत्र के विधायक ने जब भी सुखाडिया जी से जोड़ी बनायी तो मंत्री पद पर आसीन हो गए थे। समुक्त सरकारें बन जाती है जनाव ! रसीद अहमद पहाडिया से नटनियां जुड़ गईं तो मास्को की सैर कर आयी। शेखावत जी से महारावल मिल कर चले तो विधान सभा अध्यक्ष बन गए। जोड़ा टूटा तो वही हुआ, जो 'गंगा जमना' में लताजी ने गाया, 'गजब भयो रामा, जुलम भयो रे।'।

सयाने लोग जोड़ी के महत्व को समझते हैं। कांग्रेस का पहला चुनाव चिन्ह 'दो बैलों की जोड़ी' ऐसे ही नहीं रखा गया था। नादानों की बात दूसरी है। डा० सुब्रमण्यम स्वामी हठधर्मी के कारण चन्द्रशेखर से भिड़े और आज विजीटिंग प्रोफेसर बनकर जीविका थापन कर रहे हैं। दूसरी ओर जार्ज और मधु लिमए हैं। सोपा से संसोपा में गए, जनता

मे आए। चौधरीजी के दल में गए फिर जनेता में आ गए। चंद-कुंद-फांदे। डा. लोहिया से अग्रप्रकाश नारायण और चौधरी से चन्द्रशेखर तक के अखाड़ों में—पर पट्ठों ने जोड़ी नहीं तोड़ी। तो यह है समझ-दारी वाली बात।

ये जमाना वो है कि अकेला कुछ कर ही नहीं सकता, उसे साथी चाहिए। पार्टनर कह लीजिए। गरज यह कि एक ओर एक मिलकर ही दो होंगे, वरना ताली भी नहीं बज सकती। हमारे मित्र की मकान-मालिक से जोड़ी बनी हुई है। दूसरे किरायेदारों की नाक में दम है, पर मित्र महोदय मकान मालिक के टेलीफोन और फ्रिज का मुक्त उपयोग करते हैं।

जोड़े का बनना भी एक महत्वपूर्ण घटना होती है। कभी बरसों लग जाते हैं, पर बात नहीं बनती और कभी चटपट माल तैयार हो जाता है। लाभ और अपवाद स्वरूप हानि के लक्षण भी प्रायः चटपट और कभी-कभी बहुत देर से प्रकट होते हैं। हमारे माँहल्ले में एक चाइल्ड स्पेशलिस्ट आकर रहने लगे। उनके बोर्ड पर कभी मानघाता की कार वाली स्क्रीम का पर्फ्लेट चिपक जाता तो कभी 108 कुण्डीय यज्ञ का, गरज यह कि महीनों तक पता ही नहीं चला कि अगला बाल रोग विशेषज्ञ है। जिसको पता था वह पांच रुपये फीस देकर अपने बच्चे को तीन बार दिखा लेता था। लेकिन जोड़ा विधाता बनाता है। इसी सड़क पर एक जनरल स्टोर था, देखते ही देखते जनरल स्टोर दवा फी दुकान बन गया और डॉक्टर के नुस्खे में ऐसी दवायें शामिल होने लगीं, जो नाक की सीध में मिलती थी। बस फिर क्या था, 'शंकर से जमकिशन टकरामा और दोनों को मजा आया।' डॉक्टर चाइल्ड स्पेशलिस्ट था तो मेडिकल स्टोर वाला भी कम न था। उसने डॉक्टर को ऐसे-ऐसे नुस्खे बताए कि बच्चे तो बच्चे, बड़े-बूढ़े भी इलाज कराने आने लगे। और दोनों की चांदी हो गयी।

ऐसी ही एक अभिनव जोड़ी कार्तिक मेले में बनी। अभिनव इस-

लिए कि यह दो व्यक्तियों में न होकर टूरिंग सिनेमाओं में थी। मेला जोरो पर था। एक में चली 'चोरों की बारात' और दूसरे में चली 'मदारी'। 'मदारी' के आगे 'चोरों की बारात' ने घुटने टेक दिए। 'मदारी' में भीड़ उमड़ पड़ी और 'चोरों की बारात' के टिकटघर का बाबू भूगफली चबाने लगा। एक दिन निकला, दूसरा दिन निकला। इस बीच मां सरस्वती की कृपा से बुद्धि प्राप्त हुई, और दोनों टाकीजों में 'मदारी' दिखाई जाने लगी। दो रील चलती, और वहां से लेकर इस टाकीज में आ जाती। रिवाइन्ड होती और 'चलो जी मदारी, आ गया इधर भी मदारी। उधर मदारी की तीसरी और चौथी रील, इधर पहली और दूसरी। वहां से तीसरी और चौथी रील, इधर पहली दूसरी। वहां से तीसरी और चौथी रील उतरती और फिर इधर फिल्म शुरू। तो इसे कहते हैं जोड़ी।

पर यह जोड़ी भी समानधर्मी व्यवसाय वाली संस्थाओं में थी, कभी-कभी असमान व्यवसाय वाली संस्थाओं में भी जोड़ी बना दी जाती है। हमारे नगर के एक प्रतिष्ठित पब्लिक स्कूल की बिबरण-पत्रिका के अनुसार बच्चों को ड्रेस का कपड़ा छप्पनजी मानजी की दुकान ही से लेना होता है। अन्य दुकान का कपड़ा बिल्कुल नहीं चलता है। अब क्योंकि स्कूल प्रतिष्ठित है, इसलिए जो अपने नौनिहालों को उसमें पढ़ाना चाहते हैं, वे छप्पनजी मानजी की दुकान से कपड़ा खरीद लेते हैं। इस जोड़ी के पीछे नेताजी कहते हैं कमीशन वाली बात है। होगी! पर...जोड़ा भी तो हो सकता है। ईश्वर का बनाया जोड़ा—आज तक किसने तोड़ा।

कथा वाचने वाले पण्डितजी भी अपने जोड़ीदार ढोलकिये को साथ रखते हैं। 'कथा करानी है तो उसे भी बुलाओ।' फारीगर (मेसन) लोगो की एक पसंदीदा कुली होती है। जोड़ी वाली बात है। डॉक्टरों को खास एक्सरे मशीन वाले के खिंचे हुए प्रिन्ट से ही मरीज की बीमारी की जड़ पकड़ में आती है। इस जोड़े को भी मजबूरी और

वीमारी का मारा रोगी नहीं तोड़ सकता । इस प्रकार के जोड़ों के पीछे एक साधारण-सा अन्धविश्वास भी होता है । कुछ जोड़ों के जोड़ीदार तो घन्घे की लूटपाट करते ही हैं, कुछ जोड़े मजबूरी में भी बन जाते हैं, और फिर हिट होने पर स्वार्थवश बने रहते हैं । कुछ में केवल ईश्वर की इच्छा ही होती है ।

जोड़ा जब तक सफल रहता है, तब तक लोगों की आंखों में खटकता है । जोड़ा जब फेल होने लगता है, तब लोग सुख की नींद लेने लगते हैं । जब तक जोड़ा सफल रहता है, तब तक कोई एक-दूसरे की बुराई नहीं करता । जब जोड़ा पिटता है, तब जोड़ीदार स्वयं अपने साथी के द्वारे में रहस्योद्घाटन करने लगते हैं ।

लेकिन हर बार लाभ की दृष्टि से जोड़ी बनाई जाती हो, ऐसा नहीं है । जानबूझकर बदनामी या हानि उठाने के लिए भी जोड़े बनाए और निभाए जाते हैं । चेतन आनन्द वरसों से प्रिया को जोड़ीदार बनाए हुए हैं । चरणसिंह ने राजनारायण को जोड़ीदार बनाया और अपना नाम डुबाया । लोगों ने पहले भी समझाया था, पर माने कौन ! जोड़ा है तो बस जोड़ा है । □

मैं महान् नहीं बन सका

वह कविता लिखता था। लोग उसकी प्रशंसा करते कि वाणिज्य जैसे घुपक विषय का स्नातक होने पर भी उसकी लेखनी में सरस्वती का वास है। लेकिन मुझे उससे ईर्ष्या थी, क्योंकि मैं भी कविता लिखता था पर उनकी तरह मेरी प्रशंसा कोई नहीं करता। एक दिन मैंने उसे रास्ते में रोक कर पूछा, 'तुम कविता क्यों करते हो? व्यर्थ क्यों नहीं लिखते।'।

वह मेरी भूलता पर हंसा। 'मैं महान बनना चाहता हूँ—कविता मैंने इसीलिए चुनी है।'।

मैं ईर्ष्या से जल गया। मैं महान कवि बनना चाहता था और यह मेरे रास्ते में आना चाहता है। घर आकर मैंने क्षोभग्रस्त होकर दो कविताएं लिख डाली। सदा की भांति मेरी पत्नी ने उन्हें पढ़ा और सराहा, लेकिन मुझे सन्तोष नहीं हुआ।

एक दिन पान वाले ने मेरा उधार खाता बन्द कर दिया। उस संकटपूर्ण घड़ी में वह प्रतिद्वन्दी भी वही उपस्थित था। मैं धीरे अपमान में दुबारा जला। मैंने फिर दो कविताएं लिखी, पत्नी ने पढ़ा और फिर सराहना की।

अगली सुबह उसने मुझसे कहा, 'तुम महान् कवि बनने का विचार छोड़ दो। मेरी भांति केवल महान् बनो। तुम में पर्याप्त सम्भावनाएँ हैं।'।

मुझे उसके प्रस्ताव का अर्थ समझ में नहीं आया। असमंजसता की

स्थिति में मैंने दफ्तर में ही दो कविताएँ लिख डालीं। दफ्तर में पत्नी नहीं थी, अफसर था। उसने मुझे खूब लताड़ा।

फिर एक दिन वह प्रतिद्वन्द्वी घर पर आ घमका। 'मेरे प्रस्ताव पर विचार किया या नहीं।'।

मैं कुछ याद करने लगा, पर कुछ याद नहीं आया। 'कैसा प्रस्ताव।'।

उसका चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। उसने मुझे बांहों में भर लिया। 'आह! साथी, तुम तो महान् व्यक्ति की दूसरी अहर्ता की पूर्ति भी करते हो।...आओ। महान् बनने का अवसर ध्यर्थ मत गंवाओ।'।

मैंने हथियार डाल दिए। कविताएँ बहुत लिखी— एक न छपी। पत्नी बेचारी पतिव्रता। मैं यदि तबला बजाने लगूँ, तो उसे भी सराहेगी, लेकिन...पत्रिकाओं के सम्पादक! वे मेरी कविताओं को कभी छपने योग्य नहीं समझेंगे। महान् कवि बनने से अच्छा है, केवल 'महान्' बना जाए।...बाद में कवि भी बना जा सकता है। यह सोचकर मैंने कहा, 'मुझे तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार है, अपना मन्तव्य कहो...!'

'किसी भी कवि के महान् कवि होने की सम्भावना आजकल बहुत कम रह गई है। इसका एक कारण तो यह है कि पत्रिकाओं में कविता के लिए बहुत कम पृष्ठ होते हैं। कहानी, लेख या संस्मरण अधिक छपते हैं। विज्ञापन शुल्क चुकाकर कविता छपवाने का जुगाड़ हो तो और बात है। कवि-सम्मेलन के नाम पर जो तमाशा आयोजित किया जाता है, उसमें भी लतीफेबाज मसखरे ही बाजी मार ले जाते हैं। शुद्ध कवि वहाँ भी मात खाता है। अब क्या बचा। रेडियो...टेलीविजन...और फिल्म। तो यदि आप में इतना दम है तो बात दूसरी है अन्यथा...।'

उसके प्रवचन की भूमिका ही इतनी भयंकर थी कि मुझे गैस बनने की शिकायत होने लगी। मैंने कहा कि, 'तुम असली बात पर क्यों नहीं आते।'।

‘इसके विपरीत महान् बनना आज भी अपेक्षित सरल है। महान् बनने की योजना का क्रियान्वयन यदि सूक्ष्मबुद्धि से किया जाए तो लगभग सात से दस वर्षों में महान् बना जा सकता है।’...और साथी ! जब मैं महान् कहता हूँ तो मेरा आशय महान् से ही है। चर्चित अथवा ख्यात होने से नहीं। वह तो आप सात से दस दिन में हो सकते हैं।’

‘तुम इस दिशा में कब से जुटे हो।’

‘दो साल से।’

‘कुछ मिला।’

‘महान् व्यक्ति को सोना पड़ता है, पाने की चिन्ता करने वाला महान् नहीं हो सकता।’

मैं चुप रह गया। वह फिर शुरू हुआ, ‘महान् व्यक्ति का पहला लक्षण है, वह इम्पेक्यूनियस होता है, अर्थात् कड़का, जैसे कि आप और मैं। कड़की की भट्टी में महानता रूपी सोना तपकर और भी निखर जाता है। महान् व्यक्ति आराम-विस्मृत होता है—जिसे साधारण बुद्धि के लोग भूलकड़ कहते हैं। यह चिन्ह आप में मैंने देखे हैं, इन्हें आप और अधिक विकसित करें। याद रखना सरल है, भूल जाना कठिन है, इसलिए आरम्भ में अभ्यास करना पड़ेगा। याद रखकर भूलना होगा, फिर आप सहजता से भूलने लगेंगे। जैसे-जैसे अर्थाभाव से गुजरेंगे... जैसे-जैसे भूलने लगेंगे—‘आप साधारण से विशिष्ट, और विशिष्ट से उत्कृष्ट होते जायेंगे।’

‘पर महान् ! ...महान् कब मर्नेगे ?’

‘उत्कृष्टता की सीढ़ियों के अन्तिम छोर पर महानता का द्वार है...।’

मुझे उसकी बातों में किन्हीं कथित भगवान की वाणी की भावना का अहसास हुआ। बहुत जोर मारने पर भी याद नहीं आया, ऐसी बातें रजनीशजी की हैं या महेश योगी की। अपनी परिस्थितियों के सन्दर्भ में

मैंने महान् बनने की दिशा में प्रयास करना श्रेयस्कर समझ लिया। उसी समय से वह मेरा मित्र बन गया। मैंने उसे सादर विदा किया और प्रयत्नशील हो उठा। अपने मित्र को पत्र लिखा और अपने पिता के पते पर भेज दिया। इस भूल को मैंने जान-बूझकर किया। इससे मुझे प्रेरणा मिली। पत्नी ने अगरवत्ती का पैकेट मंगाया, मैं दहीबड़े ले आया। वह सिर पीटकर रह गई। वायरूम का नल खुला छोड़ दिया, जब मकान-मालिक को पता लगा तो उसने मुझे बुरा-भला कहा। ऐसी गलतियाँ करने से मुझे अभ्यास होता गया। मेरे उपरोक्त मित्र ने मुझे इम्पेक्वु-निमस होने की दिशा में भी प्रयास करने की प्रेरणा दी। मुझे प्रोत्साहित करने के लिए उसने सौ रुपये उधार मागे। मैंने पचास दिये। उसने मेरी जर्सी भी मांग ली। मुझ जैसे अल्प वेतन भोगी के लिए यह इजेक्शन पूरे महीने के लिए पर्याप्त था।

महानता की दिशा में अग्रसर होने के लिए मेरे सखा ने कुछ विलक्षण युक्तियाँ सुझायीं, जो 'टू-इन-वन' थी। उसके बताए अनुसार मैंने 'स्वामी-दादा' (फिल्म) के दो टिकटों की एडवांस बुकिंग कराई उस समय मुझे सिनेमा-हाल से तीन किलोमीटर दूर अपने ही घर में रहकर प्याज की चटनी पीसनी है। ऐसा करके मुझे कड़की और विस्मृति का दोहरा उपार्जन करना था, लेकिन मेरी अधाँगिनी ने सही समय पर मेरी जेब टटोली, ओर मुझे फटकारा। सब निरुपाय साइकिल लेकर मुझे सिनेमा लपकना पड़ा। निरास दर्शनार्थियों में एक दम्पति को मैंने चार-चार रुपये के टिकट बेचे, उन्होंने दस रुपये का नोट दिया और हादिक धन्यवाद देकर चले गए।

दूसरे दिन मेरे मित्र ने पूरा वृत्तान्त सुनकर गम्भीर वाणी में वचन कहे, 'प्रयासों की गम्भीर असफलता से कापुरुष दुखी होते हैं। कर्मठ नहीं। महानता के लक्ष्य में बाघायें विभिन्न प्रकारके क्षुद्र प्रलोभन और उपलब्धियों के रूप में आती हैं। उन्हें समझो। उन्हें पाना नहीं खोना है।'

फिर उसने वे दो रुपये मुझसे हथिया लिए । दोहरे परिणाम प्राप्त करने की कई युक्तियाँ उसने मुझे बताईं, परन्तु मैं पहले ही खस्ताहाल था । अर्थाभाव में घुला हुआ बाबू । तो भी मैंने यथासम्भव प्रयास किये और शनैः शनैः दूढ़ कड़की को प्राप्त हुआ । दाल-रोटी की चिन्ता का भार स्मरण-शक्ति और बुद्धि पर वैसे भी था । प्रयास करने से मैं दफ्तर के काम में भी भूल करने लगा । मुझ पर बाँस की फटकार पड़ने लगी । मेरे साथ काम करने वाले बाबू मुझसे सहानुभूति जताते, लेकिन मैं अपने प्रयासों की सफलता से मन-ही-मन गद्गद् हो जाता था । एक दिन उसने कहा, 'तुम आजकल कितनी कवितायें प्रतिदिन लिखते हो ।'

मुझे आश्चर्य हुआ । उसी के कहने से मैंने महान् कवि बनने के अपने लक्ष्य को संशोधित किया था, और केवल महान् बनने में जुट गया था । 'अब कविता से क्या प्रयोजन ।'

'मैंने कभी की छोड़ दी !' मैंने बताया ।

'नहीं, कविता लिखना मत छोड़ो । कवितायें लिखो, ज्यादा लिखो । दस, बारह...या और भी अधिक ।'

'दस-बारह कवितायें...प्रतिदिन !'

'हां ! प्रयास से सब सम्भव है । आनन्द बक्षी की ओर देखो । कितने गीत लिखते हैं...तुम भी लिखो । ऐसा करने से तुम्हें तीसरा लक्षण प्राप्त होगा । महान् व्यक्ति का दाम्पत्य-जीवन असफल होता है । अनि-वार्यतः असफल । महान् होने के लिए विधुर, पत्नी द्वारा परित्यक्त अथवा वध रूप से डाईवोर्सड होना जरूरी है । पत्नी का डाईवोर्स पति को महान् होने के लिए एक प्रकार का फोर्स है, शक्ति है । इन शब्दों के गूढ़ अर्थों पर पहुंचो ।'

मैं उसकी बात ध्यान से सुन रहा था पर भीतर-ही-भीतर उसे गालियाँ दे रहा था । अरे दुष्ट ! तू मुझसे क्या-क्या अन्याय करवाना चाहता है । लेकिन उसका सूक्ष्म दर्शन प्रखर था । वह बोला, 'मैं जानता

हैं तुम्हारे अन्तर्मन में मग्न हो रहा है ।... मतिवान के मन में ही मग्न होता है । मन्द के मन में नहीं । मग्न होने दो, पर महान होने के लिए, दाम्पत्य का असफल होना बहुत जरूरी है । मैंने इसीलिए शादी नहीं की ।... तुम निर्धन हो—पर-स्त्री का साहचर्य एफोर्ड नहीं कर सकोगे । दबू हो—पत्नी को मारपीट नहीं कर सकते । नशाबंदी पर उतारू राज्य सरकार तुम्हें मद्यप नहीं होने देगी ।... कैसे दाम्पत्य जीवन में आग लगेगी । इसीलिए कविता करो । इससे तुम्हें इच्छित फल की प्राप्ति होगी ।

मैं उसके गहन-ज्ञान से प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकता था । निःसन्देह मेरे पास कोई उपाय न था—कविता थी । मैं उत्साहपूर्वक कविता लिखने लगा । पत्नी को प्रसन्नता हुई । मैंने कविताओं की संख्या बढ़ा दी । उसकी प्रसन्नता और बढ़ गई । वह पड़ोस की स्त्रियों को मेरी कविताएँ सुनाने लगी । स्त्रियाँ मनोयोग से मेरी कविताएँ सुनती और मेरी कविताओं की और उसके भाग्य की सराहना करतीं जिसे मुझ जैसा कवि पति मिला । कुछ अबलाओं ने घर पर अपने प्राणनाथ से भी कविता लिखने का आग्रह किया । वे गरीब भी कविता लिखने लगे । लेकिन यह नक्शा बीस-पच्चीस दिन चला । जब मेरी कविताओं की संख्या प्रतिदिन चार से छः और आठ-दस तक पहुँची, तो मेरी पत्नी को चिन्ता हुई । उसने अपने पिता को पत्र लिखा । मेरे आदरणीय ससुर आ धमके । उन्होंने मुझे समझाया, पर महान बनने का लक्ष दृढ़ हो चुका था । उस भोले-भासे प्राणी की क्या मजा ल थी, जो मुझे विचलित कर पाता । हारकर उन्होंने मेरे पिता को लिखा । कुछ दिनों उन दोनों में लिखा-लिखी चली । इधर मेरी कविताओं की संख्या बढ़ती चली गई । परिणामस्वरूप, दो महीनों में मैंने महान होने की तीसरी अहर्ता भी प्राप्त कर ली । ससुर साहब अपनी लड़की को लेकर चले गए । पड़ोस की देवियों ने अपने पति देवों को कविता न लिखने का स्टे-आर्डर दे दिया । घर में मैं रह गया, आत्मविस्मृति रह गई, असफल दाम्पत्य रह गया और कड़की कहाँ जाती, वह भी रह गई ।

मैं पुनः उसकी सेवा में उपस्थित हुआ। मैंने कहा, 'हे सखा ! मैं तीनों अहर्तायें प्राप्त कर चुका हूँ। अब महान बनाओ।'।

'तुमने लक्ष पा लिया। इनको देखो, उसने दीवार लगे चित्रों की ओर इंगित किया, 'क्या इनमें कोई महान नहीं।' मैंने व्यग्रतापूर्वक उन चित्रों को देखा, देश-विदेश के महान व्यक्तियों के चित्र थे।

'लेकिन इन सबका क्या मतलब।'।

'मतलब है। तुम जगदीश को जानते हो। जगदीश चपरासी।'।

'हां।'।

'उस पर कल से मेरी दृष्टि से देखना। वह भी मेरी और तुम्हारी तरह महान व्यक्ति के लक्षणों से ओत-प्रोत है। पिछले साल उसकी पत्नी भाग गई। उधार लेकर काम चलाता है, और एकदम डफर समझा जाता है। अर्थात् आत्मविस्मृत ! हम तीनों महानता के द्वार पर खड़े हैं, हम महान हो गए हैं।'।

'मैंने अपने अगल-बगल में देखा, मुझे विश्वास (ही) नहीं हुआ।'।

'हां, हम महान हैं। इस क्षण को हम महान व्यक्ति की भांति जी रहे हैं। अब से हर पल हमारी महानता का साक्षी होगा। अब तुम्हारी जीवनी पाठ्यक्रम की पुस्तकों में पढ़ाई जाएगी। लोग हम पर जीव-नियां लिखकर कमायेंगे। छुटभंये संपादक के नाम पत्र लिखकर तुम्हारे मेरे और जगदीश प्योन के भी संस्मरण छपवायेंगे। मेरे जन्म का तो राज पत्रित अवकाश भी रहेगा, मैं तुम्हारे और जगदीश प्योन के लिए अभी इस बात का दावा नहीं कर सकता।

दूसरे दिन अफसर के बुलाने पर चेम्बर में गया। बिना पूर्व सूचना के दफ्तर से गायब रहने के उपलक्ष्य में उसने मुझे तगड़ी 'केपसूल' दी। मैं मन में सोच रहा था, 'डांट से, कभी मत रस ! बाद में रोएगा। मेरा क्या है, मैं तो हो गया महान !'

घर लौटा तो मेरा ब्रदर-इन-सॉ आस्तीनों चढाए दरवाजे पर ही मिल गया। वह पुलिस में ए० एस० आई० था। मुझे देखते ही दबोच लिया।

‘क्यों कलाकार, क्या ड्रामा फँला रखा है।’

मेरी महानता तिलमिला कर रह गई। लेकिन मुझे धैर्य से काम लेना ही उचित लगा। मैं हिए सराजु तौल कर कुछ कहता, इससे पूर्व ही उसने कहा, ‘देखो श्रीमान ! हम भी छटे हुए आदमी है। दो हाथ में तुम्हें सही जगह पर ला देंगे। तुम्हारी यह मजाज कि हमारी सिस्टर को घर से निकाल दिया और मेरे फॉंदर से...’ मैं सिस्टर को ले आया हूँ, वह अन्दर है। यही रहेगी। तुम फैसला करो कि गृहस्थी में रहना है कि मेरे साथ चलना है।’

मैंने उसके बजाए उसकी सिस्टर के साथ रहने में ही अपनी खैर समझी। वह मेरी साहित्य साधना को एक थैले में भरकर ले गया। ‘यह रही मैं ले जा रहा हूँ, आज के बाद केवल दूध वाले का हिसाब लिखना, कविता की तो...’

इस प्रकार मैं महान् होते-होते रह गया।



मैं पुनः उसकी सेवा में उपस्थित हुआ। मैंने कहा, 'हे सखा ! मैं तीनों अहर्तायें प्राप्त कर चुका हूँ। अब महान बनाओ।'।

'तुमने लक्ष पा लिया। इनको देखो, उसने दीवार लगे चित्रों की ओर इंगित किया, 'क्या इनमें कोई महान नहीं।' मैंने व्यग्रतापूर्वक उन चित्रों को देखा, देश-विदेश के महान व्यक्तियों के चित्र थे।

'लेकिन इन सबका क्या मतलब।'।

'मतलब है ! तुम जगदीश को जानते हो। जगदीश चपरासी।'।

'हां।'।

'उस पर कल से मेरी दृष्टि से देखना। वह भी मेरी और तुम्हारी तरह महान व्यक्ति के लक्षणों से ओत-प्रोत है। पिछले साल उसकी पत्नी भाग गई। उधार लेकर काम चलाता है, और एकदम डफर समझा जाता है। अर्थात् आत्मविस्मृत ! हम तीनों महानता के द्वार पर खड़े हैं, हम महान हो गए हैं।'।

'मैंने अपने अगल-बगल में देखा, मुझे विश्वास (ही) नहीं हुआ।'।

'हां, हम महान हैं। इस क्षण को हम महान व्यक्ति की भांति जी रहे हैं। अब से हर पल हमारी महानता का साक्षी होगा। अब तुम्हारी जीवनी पाठ्यक्रम की पुस्तकों में पढ़ाई जाएगी। लोग हम पर जीव-नियां लिखकर कमायेंगे। छुट्टीय संपादक के नाम पत्र लिखकर तुम्हारे मेरे और जगदीश प्योन के भी संस्मरण छपवायेंगे। मेरे जन्म का तो राज पत्रित अवकाश भी रहेगा, मैं तुम्हारे और जगदीश प्योन के लिए अभी इस बात का दावा नहीं कर सकता।

दूसरे दिन अफसर के बुलाने पर चेम्बर में गया। बिना पूर्व सूचना के दफ्तर से गायब रहने के उपलक्ष में उसने मुझे तगड़ी 'केपसूत' दी। मैं मन में सोच रहा था, 'टांट ले, कमी मत रख ! बाद में रोएगा। मेरा क्या है, मैं तो हो गया महान् !'

घर लौटा तो मेरा बदन-इन-लों आस्तीनें चढाए दरवाजे पर ही मिल गया। वह पुलिस में ए० एस० आई० था। मुझे देखते ही दबोच लिया।

‘क्यों कलाकार, क्या ड्रामा फैला रखा है।’

मेरी महानता तिलमिला कर रह गई। लेकिन मुझे धैर्य से काम लेना ही उचित लगा। मैं हिए तराजु तौल कर कुछ कहता, इससे पूर्व ही उसने कहा, ‘देखो श्रीमान ! हम भी छंटे हुए आदमी है। दो हाथ में तुम्हें सही जगह पर ला देंगे। तुम्हारी यह मजाल कि हमारी सिस्टर को घर से निकाल दिया और मेरे फाँदर से...’ मैं सिस्टर को ले आया हूँ, वह अन्दर है। यहीं रहेगी। तुम फैसला करो कि गृहस्थी में रहना है कि मेरे साथ चलना है।’

मैंने उसके बजाए उसकी सिस्टर के साथ रहने में ही अपनी खैर समझी। वह मेरी साहित्य साधना को एक थैले में भरकर ले गया। ‘यह रही मैं ले जा रहा हूँ, आज के बाद केवल दूध वाले का हिसाब लिखना, कविता की तो...’

इस प्रकार मैं महान् होते-होते रह गया।



ईमानदारी ! ईमानदारी !! ईमानदारी !!!

इस कम्पनी में ईमानदारी कूट-कूट कर भरी हुई है। शहर की कई कम्पनियों की तुलना में इस कम्पनी की छवि बहुत साफ-सुथरी है। लगभग वैसी, जैसी कि फिल्मी सितारों में मनोजकुमार की।

यहां का चपरासी बहुत ईमानदार है, वह अपना टिफिन कैरियर फैंक्टरी के 'विम' से साफ करता है। और अपने चरित्र की तरह उज्ज्वल बनाए रखता है। कैंटीन में बिकने वाली सात रुपये किलो वाली नमकीन भरकर ले जाता है। बाजार में चौदह रुपये किलो में बेच देता है। बाबू तो वैसे भी बापू का समान अर्थी होता है। यहां का बाबू ईमानदारी के प्रति विशेष सतर्क है। वह आये दिन बालपेन में रिफिल डालकर ले जाता है। और खाली करके ले आता है। एक बाबू को मैं जानता हूं, वह रोज कागज का लिफाफा ले जाता है। बाजार में इसका मूल्य मात्र पांच नये पैसे है।

यहां का परचेज विभाग ईमानदारी के मामले में पिछले कई वर्षों से 'टॉप' पर है। किसी भी विक्रेता से कोटेशन लेकर बिना किसी दान-दक्षिणा के उसको परचेज ऑर्डर बना दिया जाता है। इस ईमानदारी का गुणगान सप्लायर्स स्वयं करते हैं। वास्तविक प्रशंसा भी इसी को कहते हैं। यहां पर नकद में कुछ नहीं लिया जाता। प्रकारान्तर में ली या दी जाने वाली सेवा/वस्तु रिक्वर्ड के अर्थों में नहीं समझी जाती। यहां पर कम्पनी के काम से निजी वाहन लाने/ले जाने के लिए पैंतीस पैसे प्रति किलोमीटर की दर से भत्ता मिलता है। राष्ट्रीय हित में यहां का समझदार कर्मचारी फैंक्ट्री से बाहर अपना स्कूटर ले जाकर चौराहे की किसी भी पान वाले की दुकान पर खड़ा कर देता है। और सार्व-

जनिक टैम्पो द्वारा बाहर चला जाता है। इस प्रकार न केवल सब्जी मन्डी तक का काम करने में 4.20 पैसे बचाता है अपितु पेट्रोल का अपव्यय न करके परोक्ष रूप में राष्ट्रीय सेवा करके अपना परदा खूँ सुधारता है।

इस कारखाने को सुरक्षा पुरस्कार पिछले दो वर्षों से प्रतिवर्ष मिलता आ रहा है। काम के दौरान होने वाली दुर्घटनाओं की संख्या लगभग शून्य है। यहां के प्रबंधकों ने उत्पादन ठप्प करके वह बास ही तोड़ डाला जिससे कि बांसुरी बज सकती हो। प्रबंधक वर्ग अपने काम के लिए सरकारी अफसरों को उत्कोच न देने की परम्परा को बहुत शालीनता से निभा रहा है। चुंगी अधिकारियों, शुल्क अधिकारियों तथा रेलवे अधिकारियों को भीतरिया कुण्ड या गेपरनाथ में पिकनिक पर आमंत्रित किया जाता है। परन्तु नकद ! कदापि नहीं !

प्रबंधक वर्ग ईमानदारी के पीछे हाथ धोकर पड़ा है। उनके चरण-चिन्हों पर अधिकारी चलते हैं। प्रत्येक कार स्वामी अधिकारी को कार भत्ता मिलता है। परन्तु अधिकारी अपनी कार को कारखाने की दिशा में मुंह करके भी घर पर खड़ी नहीं करते।

कुछ रंगमंचीय कलाकार प्रसिद्ध स्टारों की हुबहु आवाज निकाल लेने में सिद्ध होते हैं। यहां के स्टोर्स विभाग के बड़े बावू प्लांट के बड़े-बड़े अफसरों के हस्ताक्षर बनाने में उसी निपुणता को प्राप्त हैं। स्टोर्स में जब भी किसी वस्तु की वास्तविक मात्रा पुस्तक मात्रा से कम होती है, वे अपनी कला द्वारा सन्तुलन स्थापित कर लेते हैं।

ईमानदारी का यह आलम है कि जैसे राजा पोरस के राज्य में लोग अपने घरों पर ताले नहीं लगाते थे, उसी प्रकार यहां के वाचमेन रात को ताश खेलते हैं, या फैंक्ट्री के बाहर मामा लोगो की भुगियों की ओर अभिसार की कामना के लिए विचरण करते रहते हैं। रात को चोरी होने की जरा भी शंका नहीं। ऐसा कार्य तो दिन में ही हो जाता है।

ऑडिट वाले एकाउन्ट्स पर इतना विश्वास करते हैं कि बस ल ल स्याही से टिक मार्क करना ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेते हैं। कभी-कभी आश्चर्य होता है कि केन्द्र सरकार या राज्य सरकार ईमानदारी के लिए इस फँवट्री को ट्राफी क्यों नहीं दे देती।

रात पाली में कोई कर्मचारी सोते हुए नहीं पकड़ा गया। कर्मचारी अपनी जगह, सुपरवाइजर अपनी जगह से हिले नहीं (नींद में भला हर कोई तो चल नहीं सकता)। काम के प्रति इतनी निष्ठा और कहाँ मिलेगी।

पिछले वर्ष प्रबंधक जी ने शून्य त्रुटि अभियान का आह्वान किया था। इसमें अभूतपूर्व सफलता मिली। लॉग फँवट्री के दरवाजे से घुसे हैं दीवार फांद कर नहीं आए। गाड़िया स्टैण्ड पर खड़ी की, केन्टीन में नहीं की। बाबू लोग कुर्सी पर ही बैठे, पंखों पर नहीं बैठे। पत्रिकाएं सीधी ही रखकर पढ़ी, उल्टी नहीं। खाना अपने हाथ से अपने ही मुह में डाला, कहीं और जगह नहीं। यह सब कार्य इतनी सफलता से होता रहा कि प्रबंधक महोदय गद्गद् हो गए और छः महीने में ही 'शून्य त्रुटि अभियान' का समापन करा दिया गया।

यहां के अधिकारियों को फर्नीचर खरीदने के लिए अनुदान मिलता है। यह फर्नीचर वह अपनी मर्जी से खरीद सकते हैं, और बिल लाकर जमा कर देने भर से काम चल जाता है। अधिकारी इतने भोले हैं कि बिल पलंग और गद्दे का बनवाकर घर में अलमारी से आते हैं। जिन्हें घर में नौकर रखने का पैसा मिलता है, ऐसे वरिष्ठ अधिकारी माली के वेतन का हस्तलिखित बिल अपने हाथ से बनाकर अपने पिताजी का अंगूठा लगवा लेते हैं। देखा जाए तो बाप भी गृहस्थी रूपी बगीचे का माली ही होता है। अधिकारियों को तीन हजार किलोमीटर तक की सपरिवार यात्रा करने का किराया प्रति दो वर्ष में मिलता है। अधिकारी इतने गणेश भक्त हैं, कि जिस प्रकार गणेशजी ने मां पार्वती की परित्रमा करके कार्तिकेय जी को ब्रह्माण्ड की यात्रा में पराजित कर

दिया था, उमी प्रकार पांच दिन की छुट्टी लेकर अधिकारीगण अपने माता-पिता की फोटो के आगे चक्कर लगाते रहते हैं, और सातवें दिन आकर यात्रा किराए के बिल जमा कर देते हैं, जिस पर ऑडिट वाले अपना लाल निशान लगाने को उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रहे होते हैं ।

कबाड़े का सामान बेचने में इतनी अधिक ईमानदारी बरती जाती है कि साल में दो-चार बार तो ईमानदारी को भी ज्ञापन देना पड़ जाता है कि अगर इतनी अधिक ईमानदारी बरतने लगे तो मैं कहाँ रहूँगी । कभी टूटी-फूटी ट्यूब लाइटों और बल्बों के साथ-साथ सही-साबुत माल भी उठ जाता है, तो कोई टोकने वाला नहीं । लकड़ी के डिब्बों को लकड़ी के भाव से बेच दिया जाता है जिसमें बियरिंग तक निकल जाते हैं । फैक्ट्री आयल के खाली ड्रम कबाड़े में बेचती है, जो कर्मचारी लेने का उत्सुक होता है, उसे कबाड़ी से पहले प्राथमिकता दी जाती है । इसलिए इच्छुक कर्मचारी ड्रम के खाली होने से पहले ही उसे खाली कर देते हैं । उसमें भरे हुए आयल या केमीकल को गटर माता की कोख में सौंप देते हैं, और ड्रम प्राप्त कर लेते हैं ।

हे सज्जनों ! (और देवियो भी) अधिक क्या लिखा जाए विक्रम-दित्य के जीवन में जो स्थिति उज्जैन की थी, वह यदि आप जानना चाहें तो इस फैक्ट्री के द्वारे अवश्य आयें और अपने इष्ट मित्रों को भी लाएं ।



जल्दी निवटना

बिरसे व्यक्ति ही अपना कार्य समय पर कर पाते हैं, अधिकांश व्यक्ति लेटलतीफ होते हैं। लेटलतीफ होना एक लानत है, और पंचकुल होना एक क्रेडिट है, जो सभी को नहीं मिलती। लेकिन उन्हे क्या कहें, जो समय से पहले, बल्कि बहुत पहले ही काम निबटा देते हैं।

एक महाशय हैं, जो समय से 10-15 मिनट पहले हमारे दफ्तर में पहुंचते हैं। हमें दस साल में दस बार भी यह अवसर नहीं मिल सका है। किसी तरह भाग-दौड़कर दफ्तर पहुंच जाते हैं, और नौकरी बची हुई है। धुरु में हम उन्हें प्रशंसा की दृष्टि से देखते थे। उनका अनुसरण करने की भी कोशिश की, परन्तु सफल नहीं हो सके। और यह साहब दादा कोडके की तरह कभी असफल नहीं हुए। साल बीता, दो साल बीते। आखिर उनसे पूछा, तो उन्होंने कुछ बताया नहीं पर इतना जरूर कहा, 'इसके पीछे मेरी अर्धांगिनी का हाथ है।' हम यह फारसी समझ नहीं सके। पर हमारे लेट आने पर यदा-कदा जब हमारे अफसर हमें भाड़ने-फूंकने लगे, तो हमने उनसे सन्धि करने के लिए प्रार्थना की। इस पर उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट कर मैं दफ्तर नहीं आऊँ, तो कहां जाऊँ ?'

‘यानि ?’

‘मैं तो सुबह-सुबह सोना चाहता हूँ, पर पत्नी जगा जगा देती है, तो फिर चाय का प्याला और नहाने के तैयार। नहा के निबटो. नाश्ता तैयार। नाश्ता टिफिन का डिब्बा

करू ?’

तब हमारी र

ती दफ्तर

समझ में आ गया। यह और बात है कि हम अपने अफसर को नहीं समझा सके।

मेरे एक मित्र ने सबसे पहले स्कूटर खरीदा। हम लोग अभी सहकारी समिति से ऋण प्राप्त करने के लिए सचिव को मक्खन ही बगाते फिर रहे थे। इधर साल-डेढ़ साल में उनका स्कूटर मिस्त्री को प्यारा हो गया। पता चला कि स्कूटर खरीदने में उनकी पत्नी का हाथ था, और... उसे मिस्त्री की दुकान तक पहुंचाने में उनके साले साहब का।

हमने तीसवें साल में पड़ जाने पर शादी की। हमारे साथी ने उसी वर्ष नसबन्दी ऑपरेशन करवा लिया। हमारी शादी का हमें जो उत्साह था वह एकदम ठण्डा पड़ता नजर आया। हम तो अव्वल दर्जे के फिस्सडी रहे। हमने पूछा, 'भई ! ऐसी क्या जल्दी थी।'।

'क्या करते ! अट्ठारह वर्ष की आयु में विवाह हुए, उन्नीसवें वर्ष में पिता बन गए। करते क्या, बस निबट गए।' जल्दी निबटना हरेक के बस की बात नहीं, या कहना चाहिए, हरेक के भाग्य की बात नहीं है। दुनिया भर के नेता अपनी-अपनी औकात का चुनाव लड़ने के लिए टिकट पाने के लिए चक्कर चलाते रहते हैं।

जनता पार्टी के छोटे-बड़े सभी नेताओं को बम्पर ड्रा खुलने से 1977 में न केवल टिकट मिला, बल्कि जीत भी गए। जीत गए तो सरकार बना ली—मगर आदत तो वहीं थी न जल्दी निबटने की, बस! 'जाना था हमसे दूर, बहाने बना लिए।' पहले चरण में चरणजी रूठे, दूसरे में जार्ज फर्नांडिस, और लीजिए कर लिया राज। अब विपक्ष में बैठेंगे। इतने पर भी गनीमत थी, लेकिन जाने लोक सभा की सीटों के खटमल काटने लगे थे कि फिर दूसरे लोग भी पार्टी छोड़ गए और विपक्ष से सत्ता पक्ष और सत्ता पक्ष से वापस विपक्ष का नाटक इतनी जल्दी निबटा दिया।

राजनीति में यह हालत है तो खेलकूद में भी नक्शा इससे अलग नहीं। हमारे खिलाड़ियों और पहलवानों को भी जल्दी निबटने की

आदत है। सारे देश के खेल प्रेमी रेडियो पर कान लगाए (और अब टेलिविजन पर आखें लगाए भी) खेल समाचार जानने को उत्सुक रहते हैं। खेल को हम राष्ट्रीय सम्मान से जोड़ लेते हैं, मगर हमारे खिलाड़ी ! क्या हाकी और क्या क्रिकेट ! क्वार्टर फाइनल में और कभी-कभी सीग में ही पसरी खा जाते हैं। अब चाहे खेल-प्रेमी उनके खेल से निराश होते रहें, काम उनका राष्ट्रीय हित में होता है। साखों आदमी घंटों तक खेल की कमेटी में इतने थम घंटे गंवा दें, यह हमारे राष्ट्र प्रेमी खिलाड़ी को गंवारा नहीं, इसलिए वह राष्ट्र के हित में जल्दी ही अपनी छुट्टी करवा लेता है।

फिर भी यह एक कटु सत्य है कि जल्दी निबटने वालों पर लोगों का ध्यान नहीं जाता। शत्रुघन सिन्हा सैंट पर देर से पहुंचते हैं, तो खबरो में छाए रहते हैं। शशि कपूर समय पर पहुंच जाते हैं, तो भी शालीन कहे जाते हैं। पर यदि कोई व्यक्ति (या अभिनेता) सैंट पर शेड्यूल से पहले पहुंच जाए तो लाईटमेन और पलोर मेन भी उसे घास नहीं डाले। शायद इस कारण से लोगों में समय से पूर्व निबटने की मान-सिक्ता विकसित नहीं होती है। कुछ अपवाद जरूर हैं, जो समय से पहले निबटने का कार्यक्रम चालू कर देते हैं। जैसे हमारे पड़ोसी नाथूलालजी। सुबह, शाम को गाजा और रात को दारू—धाकी समय में जर्दे का पान लेते रहे और इस व्यसन का इतनी कठोरता से पालन किया कि 39 से 40 नहीं हो सके।

मैंने कुछ पहुंचे हुए लोगों से इस विषय में मालूमात की तो उन्होंने बताया कि नियत समय से पहले निबटने वाले लोगों के स्वभाव में कुछ अधीरता रहती है। कुछ पिछली भूल को सुधारने के चक्कर में यह काम करते हैं। कुछ को परिस्थितियों की विवशता से जल्दी निबटना पड़ता है। गोकुल चन्द जी सुबह जल्दी उठकर धूमने जाते हैं, पर घर से निकलते ही जो मिल जाता है, उन्हीं को कहते हैं, 'आज तो कुछ काम है, इसलिए जल्दी ही नौट आऊंगा।' यही वचन पत्नी से कहते हैं फिर... फिर रास्ते में कोई दूध वाला या मेहतर

राम-राम करता है, उससे भी कहते हैं, 'आज काम है, थोड़ा जल्दी ही लौटूंगा।' घर आकर नाश्ता भी थोड़ा जल्दी मंगवा लेते हैं, फिर अखबार भी पढ़ने के लिए ले बैठते हैं। दफ्तर तो खैर-थोड़ा जल्दी ही जाते हैं। खाना-पीना, सोना सब थोड़ी जल्दी की घोपणा के साथ करते हैं। भूल सुधारने वाले वे पहले व्यक्ति हैं जो पहले अव्यसल दर्जे के लेट-लतीफ रह चुके हैं, पर अब प्रायश्चित्त स्वरूप थोड़ा जल्दी करते हैं। जैसे रामकरणजी कल 6.00 के बजाए 7.00 बजे उठे थे, तो आज 5.00 बजे उठेंगे। या सुबह का खाना 12.00 बजे के बजाए 2.00 बजे खाया था तो रात को खाना 8.00 के बजाए 6.00 बजे खाने की जिद्द करने लगते हैं। तीसरे परिस्थितिवश जल्दी निवटने लगते हैं। हमारे मौसाजी थानेदार रह चुके हैं। अपने बच्चों को वे सुबह साढ़े चार बजे उठा देते हैं। मैं एक बार यह नक़्सा अपनी आंखों से देख चुका था। एक बार मुझे उनके घर रात को सोना पड़ा। सुबह आंख खुली तो देखा वह अपने तड़के को झिझोड़ रहे थे। अरे कैलाश ! उठ। सोता रहेगा क्या ? कैलाश आंख मलते-मलते उठा। मैं भी उठ गया। कैलाश ने ब्रश किया, मैंने भी ब्रश किया। ठंड के मारे बुरा हाल था, पर मौसाजी का डर भी था। वह नहाकर बायरूम से लौटा, और मैं अन्दर घुमा। गर्ज यह कि वह आगे-आगे और मैं पीछे-पीछे। उसने कपड़े पहनने शुरू किये और मैं बायरूम से निकला। कैलाश ने मौजे पहनकर कहा, 'मुझे तो भोपाल वाली गाड़ी पकड़नी है, आप क्या रोज इतनी जल्दी निवट जाते हैं ?'

मैं अन्दर ही अन्दर अपने आपको कोस रहा था।

□

बात यूँ चलती है

बहुत पहले पं० दुर्गाशंकरजी ने बताया था कि एक बार दिल्ली के चांदनी चौक में दो साण्ड आपस में सींग से सींग उलझाकर भगड़ रहे थे, लोगों में खलबली मच गई। उधर से महर्षि दयानन्द सरस्वती का निकलना हुआ। हितैषियों ने स्वामीजी को रुक जाने को कहा, परन्तु आप अपनी मन्थर गति से बढ़ते रहे। दोनों साण्डों को एक-एक हाथ में सींग पकड़कर के दूर फेंक दिया और चुपचाप निकल गए। यह जब पहली बार सुना तो मैं हृदय के अंतरतल से ब्रह्मचर्य की महिमा के प्रति और पं० दुर्गाशंकर के प्रति भी आस्था से प्रभावित हुआ। परन्तु इसी प्रकरण को दुबारा एक ट्रेन यात्रा में सुना। इस बार स्थान दिल्ली का चांदनी चौक न होकर बनारस था, और प्रसंग के नायक महर्षि दयानन्द न होकर स्वामी विवेकानन्द थे। बाल ब्रह्मचारी तो खैर स्वामीजी भी थे। इसलिए ब्रह्मचर्य के प्रति आस्था तो अडिग बनी रही परन्तु शंका हुई कि वस्तुतः साण्डों को अपनी भुजाओं के बल से पन्द्रह हाथ इधर और पन्द्रह हाथ उधर फेंकने वाला महापुरुष था कौन। किताबों में कहीं पढ़ा नहीं था। बात आई गई हो गई। एक दिन दफ्तर में ही एक सद्य-नियुक्त लिपिक ने उपरोक्त कथा को दोहराया। पर इस बार यह घटना महाराणा प्रताप की किशोर अवस्था में घटित हुई थी। यह सुनकर स्मृति कोप में बड़ी उषल-पुषल हुई। किसे सही मानें और किसे गलत। किमी से पूछते भी नहीं बनता था। पर जब गत माह उज्जैन गया तो वहां पता लगा कि विनोद मील में एक पहलवान नरपतिह काम करता था। मील के मालिक भालरापाटन का मेला देखने गये हुये थे। मेले में वही दो साण्ड और...और भगदड़ का मचना...इतने में वीर नरपति का उधर से

आना...और ! सुनकर घन्य हो गया । अहा ! कैसा मेरा देश है, एक ही घटना की आवृत्ति कितने वीरों के जीवन में हुई और लोग कितनी आस्था से इनको सुनाते हैं । परन्तु घन्य होना ही पर्याप्त नहीं होता न ! इसलिए हमारे पड़ोसी श्री आर. के. भट्ट के सामने जिज्ञासु होकर यह प्रसंग प्रकाश डालने के लिए रखा । इन साहब की भीमांसा शैली परम शालीन है और व्याख्या करने की क्षमता अद्भुत है । उन्होंने कहा, 'यह घटना वस्तुतः किसके जीवन में हुई, यह तो विवादास्पद है, परन्तु जिस प्रकार से घटित हुई (होगी) वह यून है कि साण्ड संज्ञा प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुई है, व्यस्त बाजार में वस्तुतः दो महाबली दुर्दम्य व्यक्ति लड़ने-मरने को उतारू हुए थे । लोगों में भय व्याप्त था । स्वामीजी या महर्षि उधर से गुज़रे । उन्होंने अपनी नैतिक शक्ति का उपयोग करते हुए मधुर वचनों से उनको न लड़ने के लिए प्रेरित किया और वे दोनों हिंसा को उतारू व्यक्ति अपने-अपने रास्तों पर जो संभवतः पन्द्रह + पन्द्रह = तीस हाथ के अन्तर पर थे, चले गए ।

इस बार मैं और भी भाव-विह्वल हुआ । सोचा, हमारे यहाँ किसी भी एक प्रभावोत्पन्न घटना को लोग कितने विभिन्न रूपों में कह जाते हैं । किस-किस से जोड़ देते हैं । ऐसे में यदि भट्ट साहब जैसे प्रकाश-दीप न हों तो आए दिन जिज्ञासुओं के जहाज़ टकरा-टकरा कर चूर-चूर होते रहें ।

इसी तरह की एक और घटना है, जो मैंने कोटा के बारे में सुनी थी । आज से बीस वर्ष पूर्व । बूज टाकीज से एक सज्जन अपनी पत्नि और बहिन के साथ फिल्म देख कर लौट रहे थे । आखिरी शो । बायीं ओर में सड़क पर अचानक चार युवकों ने उनका मार्ग रोक लिया, उनके मुँह ढके हुए थे । उन्होंने कहा, 'इन दोनों में से किसी एक को छोड़ जाइये । पुलिस को बताने का दुष्परिणाम होगा ।' कल इसी स्थान पर हम इन्हें छोड़ देंगे । अपनी इज्जत और जान बचाने की विवशता में चुपचाप अपनी पत्नि को छोड़कर चले गये । और...। कथाकार या वाचक का आशय हमें यह समझाना था कि कोटा में जान और माल की रक्षा

करना कितना दुष्कर है। हमने भी गांठ बांध ली। इस बात को फिर कई के मुख से सुना। प्रायः वर्ष में एक दो बार तो सुनता ही रहा। हर बार घटना पिछले दिनों में हुई बताई जाती थी। कोटा से फिर जयपुर जाना हुआ। वहां भी यही बात सुनने में आई। सुनकर बुद्धि कुलबुलाई पर खैर...। लेकिन एक बार जब इन्दौर के बारे में भी यही सुनना पड़ा, तो सोचना पड़ा कि यह बातें कैसे फैलती हैं। लोग सुनने के बाद उन्हें घुमा-फिरा कर पात्र और स्थान बदलकर अपने शब्दों में क्यों सुनाते हैं। इमरजैन्सी के दिनों एक कांग्रेसी ने आपात् स्थिति की आवश्यकता पर खोर देते हुए कई भयंकर स्थितियों का उल्लेख करते हुए यह बात भी कही थी। और हाल ही में यही बात एक सार्वजनिक सभा में भाजपा अध्यक्ष अटल बिहारी वाजपेयी जी ने भी कही। और बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से कही जिस पर मंच के सामने बैठे श्रोताओं (कार्यकर्ताओं) ने दोम-दोम के नारे भी लगाये। इच्छा तो मेरी भी हुई पर इतना पुराना मसाला लोगों के गले उतर जाता है, यह सोचकर मसाले के महत्व को समझते हुए चुप रह गया। दफ्तर में चर्चा हुई, एक साथी ने (उन्हीं भट्ट साहब ने) कहा, 'वस्तुतः ऐसा नहीं है। दिल्ली में कानून व्यवस्था बहुत पुख्ता है। यह सब सरकार को बदनाम करने की बातें हैं। हुआ कुछ और ही है। फिल्म देखकर एक सज्जन अपनी पत्नी (अधेड़) और पुत्री (युवा) के साथ लौट रहे थे। कार की स्पीड बहुत तेज थी। इस पर दो युवकों ने जो पिछली कार में थे, उन्हें ओवरटेक किया और उनकी कार रोकवाई और उन्हें तेज कार न चलाने की सद्भावना पूर्ण सलाह दी। सज्जन बहुत प्रभावित हुए। वे दुवारा कार चलाने लगे, उनकी कार स्टार्ट नहीं हुई। इस पर उन युवकों ने कहा कि आप कार स्टार्ट करने की कोशिश करें, तब तक हम इन दोनों में से किसी एक को सोफटी सिलाने से जाते हैं, क्योंकि माँ सोफटी को अधिक पसन्द करती थी, इसलिए स्वेच्छा से चली गई।'।

मेरी आंखों से प्रेमाश्रु बह निकले।

कितना सुन्दर और शालीन चित्रण है। मध ही तो है। जाकी रही

भावना जैसी, प्रभू मूरत देखी तिन वैसी । अनंत हरि की अनंत कथाओं को साधु बहुविधि से कहते हैं, यह तो मुझ जैसा कुमति भी जानता है, परन्तु कई कथाएं ऐसी हैं, जिनका हरि क्या हीरो से भी सम्बन्ध नहीं है । वे कपो बहुविधि कही जाती हैं । और चलो मान लिया कि कही जाती हैं, हमें क्या, पर जब सुनना पड़ता है, और जब बार-बार सुनना पड़ता है, तो कष्ट होता है ।

एक कथा और है, एक आदमी कलकत्ता गया, उसने सुन रखा था कि वहां जेबकतरे बहुत हैं । पर वह वहां चार दिन रहा, उसकी जेब से दियासलाई भी पार नहीं हुई तो वह हस पड़ा, और सौटते समय ट्रेन में शेखी बघारने लगा, इस पर उसके पास बैठे सज्जन ने कहा, 'महाशय! इतराने की जरूरत नहीं है । आपको, मैंने अपने नाम बेचान करवाया है । और मेरा नम्बर आठवां है । मैंने आपकी जेब साफ करने के चार सौ रुपये दिये हैं । वो मैं ब्याज सहित आपसे वसूल कर चुका हूं । जरा अपना बक्सा टटोलिये ।' बक्सा नदारद था । इस हरि कथा की अपनी आयु में अब तक मैं कम से कम साठ बार सुन चुका हूं । कभी कथा का पात्र कलकत्ता जाता है, कभी कानपुर । कभी कथाकार का वह मामा होता है, कभी मौसा । और कभी-कभी आपबीती सुनाने वाले यक्ता भी सामने आ जाते हैं । इसका कारण यह हो सकता है कि कहने वाला या तो सुनने वाले को निरा मूर्ख समझता है या वह स्वयं मूर्ख होता है, पर नहीं जानता या मानता । या कुछ को कुछ नकद कहने का रोग भी होता है । तो सुनी-सुनाई बात को अपने ऊपर या अपने चाचा, ताऊ पर ढालकर भी कह जाता है । कुछ लोग इसको बड़े ध्यान से सुनते हैं । गहरे में चिंतन करते हैं, और फिर उसकी व्याख्या करते हैं । मैं जब तब व्याख्या की आवश्यकता होती है, भट्ट साहब के पास जाता हूं । उनकी व्याख्या पालीन और उदारवादी होती है । इस घटना पर भी मैंने उनसे द्বেतपत्र जारी करने का आग्रह किया तो उन्होंने अपने साथ घटित हुई एक दास्तान सुना दी । उनके शब्दों में :—

मैंने भी आगरा के लिए ऐसा सुन रखा था । मैं बी० ए० करके भी

बेकार घूम रहा था। सोचा, क्यों न आगरा में कोशिश की जाए। नौकरी मिली नहीं, सोचा, क्यों न इस चर्चित व्यवसाय में पौहप-परीक्षा की जाए। एक आसामी दिखा, उसने कोटा का टिकट लिया। तो सौ का नोट निकाला। कुली को पैसे दिये तो बीस का नोट निकाला। चाय पी तो दस का नोट निकाला। मतलब यह कि मुझे पक्का हो गया कि यह अच्छा-खासा मुर्गा था। उसकी जेब तो मैं साफ़ कर नहीं सकता था। दलाली करना आसान था। उसके आस-पास घूमते हुए मैंने ध्यान से देखा, एक व्यक्ति उसके आगे-पीछे घूम रहा था। मुझे समझने में देर नहीं लगी कि यह भी उसी की तलाश में है। मैंने उस सज्जन से कहा, 'यह मारवाड़ी मेरा शिकार है, यदि तुम चाहते हो तो ले लो, मेरा रेट पचास रुपये मुझे दे दो, तुम फिर भी बचा लोगे।' सुनकर वह आपे से बाहर हो गया। उसने कहा, 'क्या आप मुझे जेब-कतरा समझते हैं, या आप भी जेब-कतरे हैं, जनाब मैं तो सम्पादक हूँ। विडम्बना है कि मेरा पत्र आजकल बन्द है, पर आपने कैसे मुझे इतना गिरा हुआ समझ लिया? क्या आपने कवि 'दारुण' का नाम नहीं सुना?' कहते हुये वह व्यक्ति फूट-फूटकर रो दिया। □

भूमिगत

'वो' फिर भूमिगत हो गए हैं। उनका मकान-मालिक उनके बारे में कोई भी सन्तोषप्रद जानकारी नहीं दे सकता। या कहें कि वह स्वयं उन्हें ढूँढने के चक्कर में हैं। ऐसा वे प्रायः करते हैं। जब भी उनका डालर कमजोर होता है, वे भूमिगत हो जाते हैं। आजकल उन्होंने अपने एक विधुर मित्र के घर डेरा डाल रखा है। वे उसे ज्ञान और वैराग्य की चर्चा से मुग्ध किये रहते हैं। उन्हीं के खाते में खाना खाते हैं और आगामी योजना बनाते हैं।

अखबार वाला नियमित रूप से उनके कमरे में अखबार डालता जाता था कि उसके भोलेपन पर दया करके मकान मालिक ने कहा, 'क्यों अपना घन्घा चौपट करते हो? यह महाशय तो गायब हैं।' अखबार वाला दूसरी नस्ल का था। वह पैसे लेना जानता था, उसने मकान मालिक की बात का कोई उत्तर नहीं दिया और अपना काम करके चला गया।

दूध वाला भी इक्का-दुक्का इधर का चक्कर लगा लेता है, पर निराश होकर चला जाता है। पान वाला भी इसी वियोग में है, और परचूनी भी। मुझे उनके भूमिगत होने से विशेष परेशानी नहीं, पर मेरी जर्सी वह ले गये हैं। इसलिए थोड़ी सी अड़चन है। बैसे आजकल सर्दी नहीं है, पर इस बार उनकी भूमिगत होने की अवधि यदि बढ़ गई तो मुझे नई जर्सी लेनी पड़ जायेगी।

प्रायः वे जुलाई-अगस्त में भूमिगत होते हैं। जब दो-दो, तीन-तीन महीने का बिल द्यू हो जाता है, तब वे अपने साधियों से आर्थिक सहायता का अनुरोध करते हैं। हाथ-पाव मारने से कहीं कुछ हाथ भी लग जा...

है, उससे दो-चार दिन गुजर जाते हैं। लेकिन इससे क्या होता है ! अंततः वे भूमिगत हो जाते हैं।

भूमिगत होना अपने आप में कितना रोमांचकारी है, इसकी तो मैं कल्पना ही कर सकता हूँ, परन्तु भूमिगत के साथ रहने के अनुभव मुझे अवश्य हुए हैं, और मैं समझता हूँ कि मुझ जैसे फिसड़वी व्यक्ति के लिये इतना ही काफी है।

एक बार मैं कैण्टिन का खाना खा रहा था, मेरे सामने बैठे एक साथी ने पूछा, 'क्यों भाभीजी आजकल नहीं हैं ?' मैंने कहा, 'नहीं, यही है। क्यों ?'

'वैसे ही', आप तो घर का खाना खाते हैं ना इसलिए। बात यही समाप्त हो गई, पर मुझे पता नहीं था कि मेरी यह छोटी सी मुलाकात मेरे लिए एक महत्वपूर्ण घटना बन जायेगी। दुबारा फिर उन्हीं महाशय ने मुझे कैण्टिन का खाना खाते देखा, तो उन्होंने इशारे से ही पूछा, 'आज कैसे !'

मैंने कहा, 'मिसेज अपने घर गई हुई हैं।' सुनते ही उसके चेहरे पर चमक आ गई, और उन्होंने मुझसे अंतरंगता पूर्ण वातावरण में विविध विषयों पर कितनी ही बातें कर डाली। गृहस्थी के झुंझट में लुप्त (या सुप्त) हो गए कितने ही रुझान उन्होंने ताजा करा दिये और मेरी वो हालत कर दी कि शाम को उन्हें मैं अपने घर ले आया।

चाय बनी, छत पर जाकर पी, बातें की, और बातें भी ऐसी जमी कि कब शाम ढल कर रात हो गई, पता ही न चला। फिर भी उन्हें जाने की नहीं सूझी। और मेरी मति को तो दारुण दुख देने के पहले विधाता हर चुका था, सो मैं उन्हें होटल ले गया, हमने साथ-साथ खाना खाया। फिर थोड़ा टहलने गये। उनका घर उसी दिशा में पड़ता था। चौराहे से मैं जब लौटने को हुआ तो वे बोले, 'मैं भी चलता हूँ।' उनके प्रस्ताव से मुझे अति प्रसन्नता हुई, और मैं उन्हें अपने कमरे में ले आया। दूसरे दिन वह स्वयं मेरे घर आ गए, और मेरी दिनचर्या में ऐसे घुल गए कि मैं सम्मोहित सा उन्हें देखता भर रहा, उनके सानिध्य

पुलकित होता रहा । तीसरे दिन जब वह फिर आये तो उन्होंने कह दीया कि जब तक भाभीजी आएंगे, मैं यही आ जाया करूंगा । लेकिन मेरी समझ में नहीं आया कि वह ऐसा क्यों कह रहे हैं । धीरे-धीरे जब हमारी प्रीति बढ़ी, तब उन्होंने बताया कि उनके पीछे कितने लेनदार पड़े हुए हैं, इसलिए वह भूमिगत हो गए हैं ।

क्रांतिकारियों के बारे में कहा जाता है कि जब तक उनका लक्ष्य पूरा नहीं हो जाता, तब तक वे सत्ता के सामने समर्पण नहीं करते और भूमिगत हो जाते हैं । इसी प्रकार की क्रांति का अरमान लेकर हमारे मोहल्ले का एक युवक राधेश्याम अपनी प्रेमिका को पत्र लिख बैठा । प्रेमिका भी मेट्रिक की परीक्षा दिए फुसंत में बंठी थी । लिहाजा हाथो-हाथ उत्तर आ गया । बस फिर क्या था एक पत्र इधर से, एक पत्र उधर से आता-जाता रहा । इसकी खबर पहले सप्ताह में ही प्रेमिका के भाई ध्यानसिंह को लग गई । उसने बहन को जरा सा डांटा और राधेश्याम की तबियत ठीक करने के लिए मौका ढूँढने लगा । प्रेमी राधेश्याम को जब पता चला कि सदियों पुराना प्यार का दुश्मन प्रेमिका का भाई उसके प्यार को सूटना चाहता है, वह भूमिगत हो गया । (रातो-रात अपने चचेरे भाई के पास कोटा खला गया) ध्यानसिंह आस्तीनें बढ़ाए प्रेमी राधेश्याम को ढूँढता रहा, लेकिन राधेश्याम हाथ न आया । वह भूमिगत हो चुका था ।

प्रेमी और श्रुणी के अलावा कुछ और व्यक्ति भी हैं, जो भूमिगत हो जाते हैं, पर उनका पलायन किसी गहन (गम्भीर) उद्देश्य (या कारण) से न होकर कुछ निकृष्ट दर्जे का होता है । जैसे दशहरे के मेले के दिनों में कोटा के लोग आस-पास के गावों से आने-जाने वाले लोगों की मेहमानदारी से बचने के लिए भी घर से फूट लेते हैं । खंदा मांगने वालों के मारे भी कुछ लोगों को भूमिगत होना पड़ जाता है । नेताजी, मंत्री या एम०एल०ए० जी भी चुनाव जीतने के बाद प्रायः भूमिगत रहते हैं, और पक्के अवसरवादियों की तरह कभी कभी उद्घाटन, शिलान्यास के अवसर पर ही दर्शन देते हैं । भूमिगत होना अपने आपको सुरक्षित

लक्ष्य की प्राप्ति होने के लिए प्रयत्नशील रहने का एक मात्र उपाय है। नेता को चुनाव जीतने के बाद मंत्री पद पाने के जोड़-तोड़ चलाने के लिए मतदाताओं से अपने आपको बचाने के लिए भूमिगत होना पड़ता है। कर्जंदार को महाजन से बचने के लिए यही विकल्प चुनना पड़ता है। जनालायक घेरे शहर में नौकरी करने लगते हैं, वे कस्बे से आ घमकने वाले सगे बाप से बचने के लिए भूमिगत हो जाते हैं, क्योंकि वेतन में उनके अपने खर्च पूरे नहीं होते, बाप को क्या दें।

इसी प्रकार के निकृष्ट और उत्कृष्ट सद्यों के लिए लोग भूमिगत होते रहते हैं, लेकिन हाल ही में भूमिगत होने का रिकार्ड झालावाड़ के एक बिजली का सामान बेचने वाले ने तोड़ा है। जिसे कवियों के अत्याचार के कारण भूमिगत होना पड़ा। आचार्य महावीर प्रसाद शुक्ल जन्म शताब्दी के अवसर पर कवि सम्मेलन हुआ। बिजली-माइक वाला भी साहित्यिक रुचि का था, इसलिए भवानी नाट्यशाला में हो रहे कवि सम्मेलन में जा पहुँचा। हाल खचाखच भरा हुआ था। मंच पर उद्घोषक महोदय ने सूचना दी, 'यह कवि सम्मेलन एक अनूतपूर्व कवि सम्मेलन है, जिसमें एक सौ अस्सी कवि भाग ले रहे हैं।' तब उसे पता चला कि सामने जो बैठे थे, सबके सब मा सरस्वती के पुत्र कवि थे। श्रोता उसके अलावा कोई नहीं था। कवि सम्मेलन सारी रात चला, और यह विश्व का एकमात्र कवि-सम्मेलन था, जिसमें कवि श्रोताओं में बैठे थे, और एक मात्र श्रोता को मंच पर बैठे रहना पड़ा। किसी तरह कवि सम्मेलन का समापन हुआ, तब उद्घोषक जी को पता चला कि माइक वाला वहाँ नहीं था। खोजबीन हुई, पता नहीं चला। आज तक नहीं चला। चलेगा भी नहीं। वह एक पत्र छोड़ गया, जिसमें लिखा था कि जब तक इन एक सौ अस्सी में से एक भी इस दुनिया में है, मैं इसी तरह फरार (भूमिगत) रहूँगा। □

दया दिखावा है

कुछ व्यक्ति बड़े दयालु होते हैं, उनमें यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि सबसे बड़ा दयालु कौन है। नगर के बीचों-बीच गढ़ में सुबह सुबह ऐसे दयालु प्रकट होते हैं। यहां पर कबूतरों को डालने के लिए कोई कटोरे में, कोई थैली में, कोई रुमाल में ज्वार लेकर स्त्री-पुरुष आते हैं। कबूतरों को ज्वार डालने के बाद कुछ देर खड़े रहकर काम-धंधे वाले घर लौट जाते हैं, और ठलुए कबूतरे पर बैठ जाते हैं। फिर कुछ देर बाद सेठजी अटारी वाले पीपे को कंधे पर रख कर आते हैं, और ज्वार डालने लगते हैं। इस पीपे में ज्वार दस-यांच किलो नहीं होती, पर उनका अंदाज यही होता है। जाते समय भी वे पीपे को कंधे पर उसी तरह रख ले जाते हैं। इसका रहस्य बहुत कम को पता है।

उनके दयालु होने की पराकाष्ठा यहाँ तक है कि उन्होंने कबूतरों के नाम तक रख दिये हैं। ज्वार डालने पर जब कबूतर पंख फड़फड़ा कर उनके कंधे पर बैठ जाता है तो वह बाद में उन ठलुओं को बखान करते हैं, यह 'जुगलिया' मुझे बहुत चाहता है। कभी 'द्वारकिया' उन्हें नज़र नहीं आता और वे कुछ चिंतित से हो जाते हैं। कुछ लोग अटारी वाले सेठजी की इन अदाओं को कोरी नक्शेबाज़ी कहते हैं। लेकिन दयालु लोगों की गिनती में उनका नाम आज भी है। इनकी टक्कर के एक दयालु और हैं, रामविलासजी, यह साहब गर्मी हो या बरसात रोज सुबह खण्ड्या के तालाब पर जाकर मछलियों को आटे की गोलियां डालते हैं। इसमें उन्होंने कभी नामा नहीं की। सबसे बड़ा पुण्य वे मछलियों को आटे की गोली डालती ही मानते हैं। इनकी सेवा कठोर है, क्योंकि तालाब नगर से दो किलोमीटर दूर है और गढ़ में कबूतर डालने वाले तो अटारी वाले

सेठजी के प्रतिद्वन्दी और भी है, पर मछलियों को आटे की गोतियां डालने वाले दयालु एकमात्र रामविलासजी ही हैं। मगर निन्दक हर कही मौजूद है, जो लोग गल्ले के व्यापारी, अटारी वाले के लिए कहते हैं कि वह तो ज्वार का कचरा इकट्ठा करके सुबह-सुबह डालने आ जाता है, वही जनता पलोर मिल रामविलास जी के लिए कह देते हैं कि हर ग्राहक के पीपे से 200-400 ग्राम आटा मारकर अगर दस-बीस गोतियां मछलियों को डाल भी दी, तो क्या हुआ।

हमारा भाई भेरू लाल इन सब बातों को सुनता है, पर उसके मन में सेठजी और विलास जी दोनों के प्रति आस्था और आदर का भाव बना हुआ है। उसके लिए दयावान व्यक्ति ईश्वर का रूप है। और इसी लिए कमल किशोरजी भाई साहब साक्षात् देवता हैं। भेरू लाल बिजली बोर्ड में काम करता है। मीटर रीडर है। हर महीने के दूसरे और तीसरे सप्ताह में उसका काम शुरू होता है, और बाकी पहले और चौथे सप्ताह वह फुर्सत में रहता है। मीटर रीडर का काम बहुत टेढ़ा है। सबसे पहले वकील साहब की रीडिंग ली, तो उनका बिल 86/- रुपये आ गया। वकील साहब के खाते में बिजली चार्ज 18/- रुपये से ज्यादा, कभी नहीं आया। घर में पंखा नहीं था, तब भी 18/- रुपये बिल आता था। पंखा आया, कूलर आया। बकालत अधिक चलने लगी तो टी०वी० भी आ गया, मगर बिल 18 से 19 नहीं हुआ। इस बार 86/- रुपये का बिल आया तो वे सीधे कमल भैया के पास गए और कमल भैया ने भेरू लाल को पहला पाठ पढ़ाया। तबसे भाई भेरू ने वही रीडिंग ली, जो कमल भैया कहते हैं। चाहे वह बूढ़े पेन्शनर जगन्नाथ का घर हो या सोनी ज्वैलर्स का घर हो। कमल भैया ने उसे नौकरी दिलायी थी। होने को तो भेरू लाल का पिता भी बिजली बोर्ड का नौकर था, पर उनके रिटायर्ड होने पर भेरू लाल को नौकरी मिलने में बहुत अड़चन आयी थी, जिन्हें कमल भैया ने दूर किया था। तब से ही कमल भैया उसके मार्गदर्शक बन गए थे।

इन दिनों भेरू लाल को कमल भैया से एक काम और आ गया था।

उसे अपना भाई भी बिजली बोर्ड में लगवाना था। कमल मैया का आश्वासन पाने के लिए भेरू ने सारा खोर लगा रखा था। दफ्तर जाने के पहले कमल जी के घर जाना। दफ्तर से आने के बाद उनके घर जाना। कोई बाज़ार या घर का काम करना हो तो करना, न करना हो तो बच्चों को खिलाना व खुश करना। वस एक बार मैया जी का आश्वासन मिल जाए तो नौकरी पक्की। किन्तु की बात अप्रैल-मई में वाटर बर्कस की सप्लाई फँस होने लगी। पहले दो बार तीन-तीन घंटे पानी आता था। फिर एक-एक घंटे हुआ, फिर एक बार रह गया और फिर कहीं आता कहीं शूँ...शूँ...फूँ...फूँ करके नल बन्द रहने लगे। कमल जी के घर के नल को भी यह सत पड़ गई। फिर क्या था, भेरू लाल ने रस्सी, बाल्टी और मटका उठाया और कुएं की राह ली। बीस-बीस मटके पानी भरकर उसने कमल मैया का मन जीत लिया, पर अभी तक उन्होंने शाबाशी ही दी थी। रामा की नौकरी के लिए कुछ नहीं कहा था। एक दिन उसने रामा की उम्र के एक लड़के को देखा, पूछा तो पता लगा कि वह कमल मैया की मिसेज का भाई है। वह भी घर पर काम करता मज़दूर आता था। कभी सब्जी का थैला, कभी मिट्टी के तेल की पीपी। कुछ दिनों बाद दोनों में बोलचाल हो गई तो उस लड़के विकास ने बताया कि भुम्मे बोर्ड में नौकरी दिलाने के लिए कमल मैया कोशिश कर रहे हैं। इसलिये गांव से आया हूँ। यह सुनकर भेरू लाल को कुछ अच्छा न लगा। उसे अपनी मेहनत अकारण सी लगी। पर जाने क्यों उसके मन का विश्वास इतना गहरा था कि उसने सेवा में कमी नहीं आने दी। कुछ दिन बाद वह लड़का वहां नहीं दिखा। मालूम किया तो पता चला कि वह गांधी कॉलोनी में कमल मैया के प्लॉट पर निर्माण कार्य चल रहा है, वही रहता-खाता है। उसने राहत की सांस ली और कमल मैया से अपने मन की बात कह डाली। उन्होंने सहजता से हंस कर कह दिया, 'अरे, क्या मुझे रामा की चिन्ता नहीं है ! इस बार की भर्ती में रामा की नौकरी पक्की।' भेरू को जैसे जयपुर वाले चेयरमेन साहब का आश्वासन मिल गया हो। वह नियमित सेवा करता रहा। एक दिन घर

गया तो कमल भैया के बच्चे बां...बां...कर रहे थे। दादी की नाक में दम आ गया। कुछ को भूख लगी थी...कुछ मम्मी...मम्मी करके रो रहे थे। पता चला कि कमल भैया की मिसेज को स्कूल में दो माह की टेम्परेरी सविस मिल गई है। इसलिये यह सब खटराम हो रहा है। इस मामले में भेरू भाई क्या करे। लेकिन कुछ ही दिन बाद वहां एक सुन्दर सी युवती दिखाई देने लगी। वह घर का काम-काज करती। बच्चों की देखभाल करती, और दिन-भर व्यस्त रहती। भेरू लाल को कुछ दिन बाद पता चला कि यह कमल भैया की दूर की रिश्ते की साली है, जिसके लिए योग्य वर ढूढने का काम भैया ने अपने हाथ में लिया है। भेरू लाल का कमल भैया के प्रति दिल में उमड़ता कृतज्ञता का सागर हिलोरें लेने लगा। कुछ दिन बाद एक सज्जन आए, पता चला कि यह कमल भैया के रिश्ते के मामा-ससुर, अर्थात् उस लड़की आभा के पिता थे।

जब भेरू लाल घर जाने को हुआ तो कमल भैया ने एक तरफ ले जाकर कहा, 'यार भेरू, अजीब मुमीबत में हूं। हमारी जाति में लड़का लाखों मागता है, और ये लोग समझते नहीं। पीछे पड़े रहते हैं। इसलिए मैंने लिख दिया कि लड़का देस लिमा है, लड़की भेज दो, लड़की आ गई, तो फिर चिट्ठियां आने लगी कि क्या रहा !...लड़के को लड़की जमी या नहीं। लड़का है कहां...तुम एक काम करो, कल अपने रामा को ले आओ, समझा बुझा कर। बस थोड़ा टिपटॉप होकर आ जाए, बाद में मैं सम्भाल लूंगा। यह लड़का देखकर गांव चले जाएंगे। फिर हम लिख देंगे कि लड़के को लड़की नहीं जमी। क्या...बस तुम यह काम कर दो।'।

भेरू लाल के दिल में कमल भैया के प्रति कृतज्ञता से उमड़ता सागर...ठिठक गया। उसके आगे मासूम युवती आभा, भोले-भाले बिकास और अपने भाई रामा के चेहरे नाच रहे थे, जो बहुत-सी आशाएं लगाए कमल भैया के प्रलोभन में आकर बिना मजदूरी की नौकरी कर रहे थे।

(स) सौर ऊर्जा

सौर ऊर्जा या सौर एनर्जी का अध्याय हमारी तकनीक में अभी नया ही जुड़ा है। वैज्ञानिक इस मामले में अभी सोकर ही उठे हैं। वह भी तब, जबकि कोयला की खदानें ख़सास होने लगीं या आणविक इकाईयां बिजली उत्पादन करते-करते जुम्मे के जुम्मे ठप्प होने लगीं। अभी छोटे-मोटे उपकरणों पर प्रयोग हो रहे हैं या समीनार आयोजित किये जा रहे हैं।

दूसरी ओर चतुर सुजान दामाद जंवाई भाई हैं, जिन्होंने शताब्दी पूर्व ही सौर ऊर्जा का महत्व समझ लिया था। और इस ऊर्जा का दोहन करने लगे। नेता और द्वापर में असुर शक्ति बढ़ने से भक्तगण ब्राहि माम्...ब्राहि माम् करते हुए क्षीर सागर की ओर भागने लगते थे। कलयुग में मामला उलटा है। सौर शक्ति बढ़ने से दामाद गण गदगद हो जाते हैं। और धन्य...धन्य करते हुए कोई बिना पढ़े पास हो जाते हैं, किसी को नौकरी मिल जाती है, कोई प्रमोशन हथिया नेता है, तो किसी को बैंक से ऋण, या किसी को लाईसेन्स अथवा 'कोटा' मिल जाता है। गर्ज यह कि जितना दमदार सौर होता है, उतनी ही ऊर्जा पैदा होती है।

इसी सौर शक्ति को बंगला में 'शो शोर शक्ति' और सौर एनर्जी को 'शालेर एनर्जी' कहते हैं। अप भ्रंष और सदोष उच्चारण की स्वाभाविक क्रिया में यह शब्द वैज्ञानिकों को मिला तो वे उल्टे कदम लोटे और शालेर एनर्जी को सौर एनर्जी और शोशोर एनर्जी का अर्थ सूर्य की शक्ति लगाकर भगवान भास्कर की ओर उन्मुख होने लगे।

इसे विडम्बना ही कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक अभी तक सौर ऊर्जा से पानी गर्म करने के संयंत्र ही चला रहे हैं। या कहीं-कहीं खिचड़ी पकाने के चूल्हे भी जल रहे हैं। लेकिन हमारे मित्र पी० के० मुखर्जी सोसोर ऊर्जा से घर में टेपरिकार्ड और सड़क पर स्कूटर चला रहे हैं।

उनके गोगौर माहव मेल-टेक्स अधिकारी हैं। एकमात्र कन्या के पति होने के कारण ससुर जी की गारी ऊर्जा उन्हें ही प्राप्त हो रही है। दूसरे बाबू सर्दी के कारण रजाई की चिन्ता में हैं। वे आने वाली गर्मी के लिए रुम कण्ठीशनर की संधारी में हैं। प्रचुर मात्रा में ससुर ऊर्जा मिलने से दामाद दूरदर्शी होकर छः महीने आगे की सोचने लग जाता है।

घैसे देखा जाए तो ससुर ऊर्जा को प्राप्त करने में कोई दामाद पीछे नहीं हटता। जहां ससुर नहीं होता, वहां सोलर अर्थात् माते की शक्ति से काम चल जाता है। अंग्रेजी में इसे (Solar Energy) कहते हैं। जिस घर में सौर या सोलर न हो, वहां का भगवान ही मालिक है। ससुर या साला या दोनों में से एक यूँ तो अपनी शक्ति से यथा सम्भव मंगनी में, सगाई में, शादी में और बाद में हिलनी-मिलनी के रूप में समय-समय पर कुछ न कुछ शक्ति दामाद को देते रहे हैं, पर अब के चन्द्रगुप्त रूपी दामाद अपने चाणक्य रूपी बाप/चाचा/भाई/दोस्त के मार्ग-दर्शन में ऐसे-ऐसे नुस्खे सीख गये हैं कि नौकरी प्रमोशन तो क्या, नल-विजली के बिल तक का भुगतान ससुर ऊर्जा से होने लगा है। कपड़े सिलने और धुलने लगे हैं। वैज्ञानिक कहां लगते हैं। वे तो सौर ऊर्जा से अभी लिचड़ी पका रहे हैं, जब तक पकेगी, तब तक तो भाई राधेश्याम पुंवार भी ससुर ऊर्जा से महावीर नगर में मकान बनवा चुका होगा।

हम तो नादान थे, जो हाथ मलते रह गए और पांच कन्याओं के एक निर्धन अध्यापक पिता को अपना ससुर बना बैठे पर जो अब शादी करने वाले हो, वे एक बारीक बात को ध्यान में रखें, कि आपका सौर (ससुर) या सोलर (साला) पैसे वाला एव दिल वाला दोनों हो, या फिर ऊंची पोस्ट पर विराजमान हो, साथ ही साथ यह भी देखें कि उस ऊर्जा केन्द्र से पॉवर सप्लाई अधिक स्थानों पर न हो रही हो, वरना आपके स्टेशन पर आते-आते वोल्टेज डाऊन हो जाएगा, और अगर पूरा अणु-शक्ति-केन्द्र ही फँस हो गया तो आप अंधेरी रात में दिया अपने ही हाथ में लेकर माचिस दूढ़ते रहेंगे।

यानि आपके ससुर के आप यथासम्भव एकमात्र दामाद ही बनें। या अधिक से अधिक दो में से एक, इससे ज्यादा में आपका हाल वही

होगा, जो रामेश्वरजी का हुआ । हम दो मित्र उनके घर गए तो पानी के गिलास के बाद खाली हाथ लिए भाभीजी आ गयीं और बैठ गयी । पहले नमकीन की प्लेट के साथ बर्फी की प्लेट तथा कॉफी आती थी ।

हम इन्तजार करते रहे, तब रामेश्वरजी ने कहा, 'अब तो केवल पानी पीकर ही धैर्य धारण करो मैया, किसी पदार्थ की आशा मतकरो ।'

कोई शर्मंदार व्यक्ति होता तो खनीन में गड़ जाता, पर मैं ठहरा भालावाड़ी—मेरा शर्म से क्या काम ? फिर भी जिज्ञासावश पूछा, 'आपकी दशा ऐसी क्योंकर हुई ? कृपया बताएं ।' 'हमारे पापा हमारी तीसरी साली की शादी कर रहे हैं—इसी जून में, इसलिए हम जरा टाइट चल रहे हैं ।'

‘...! लेकिन आपके पापा आपकी साली की शादी कर रहे हैं, ऐसा क्यों ! क्या आपके समुर जी मर गए !’

मेरा मित्र बीच में ही बोल पड़ा, इस पर भाभी जी ने तमक कर कहा, 'हाय ! ये क्यों कहते हो मैया ! मरे मेरा समुर, इनका समुर क्यों मरे !'

उस अज्ञानी को पता ही नहीं कि रामेश्वर जी अपने समुर जी को ही पापा कहते हैं ।

भाभीजी के वहां से उठ कर जाने के बाद ही रामेश्वरजी ने फरमाया कि असल में हमारे समुर के चार कन्याए हैं । एक तो हम है । दूसरे घामाद जयपुर में हैं । हमारे पापा यानी ससौर ने दूसरी लड़की की शादी के बाद ही हमें सप्लाई में कटौती कर दी थी, पर फिर भी मामला ठीक था । फरवरी से ये सस्पेंड चल रहे हैं, जून में लड़की की शादी है इसलिए...! तनस्वाह में तो किराना, दूध और किराया ही निकलता है, स्टैंडर्ड तो मोसौर जी से मेन्टेन हो रहा था, वह प्लाण्ट ठप्प हो गया है । इसलिए सादा जीवन और उच्च विचार में संतोष करना पड़ रहा है । उन्होंने लम्बी सांस खींची और कुछ देर मौन रह कर बोले, 'मैया, कोई शादी करे तो ऐसी जगह करे कि सारी ऊर्जा उसे ही मिले, वरना...हमारी तरह ये दिन भी देखने पड़ सकते हैं ।'

शहर दरोगा का विदाई समारोह

उस दिन शहर के एकमात्र छविग्रह में चल रही फिल्म 'राम तेरी गंगा मैली' के टिकट लोगो को आसानी से मिल गए। ऐसा नहीं कि भीड़ न थी। खूब थी, मगर ब्लैक नहीं हुआ। लोगो ने खिड़की से टिकट ले लिए।

सर्राफे पान की दुकान पर बैठ कर सट्टे की पर्ची काटने वाला कोई खाईवाल नज़र नहीं आया। सटोरिए परेशान थे। धर्मशाला का बाबू भी परेशान था। जिसके पाम मप्लाई करने वाला दलाल गोपीचन्द घबकर काटता था, और धर्मशाला में ठहरने वाले किसी मुमाफिर को माल की दरकार होने पर बन्दोबस्त करता था। यह खबरें अखबार में नहीं आई, मगर ऐसा हुआ था। उस दिन गुड के व्यापारी रामधनजी के घाड़े में शहर दरोगा का विदाई-समारोह था, जिसमें बिना किसी शोर-शराबे और दिखावे के धानेदार जालिम सिंह के अचानक तबादले के आदेश से सन्न रह गए, उनके मुरीद एकत्र हुए थे।

सबसे पहले बुजुर्ग व्यापारियों के प्रतिनिधि के रूप में स्वयं सेठजी ने दरोगा को माला पहिनायी, और कहा, 'साथियों! दरोगा जी अभी दो साल भी पूरे नहीं कर पाए थे कि उनका ट्रांसफर हो रहा है, हो सकता है, उन्होंने ही हममें कोई कमी देखी हो, और इसलिए टॉक जैसी जगह तबादला खुद करवाया हो या खुद किसी ने उनका पत्ता काटा हो, यह पुलिस के आन्तरिक मामले हैं। मैं तो केवल इतना कहूंगा कि दरोगा जी को पुलिस की नौकरी के बजाए व्यापार मन्त्री होना चाहिए। उनके यहां रहने से हमें कोई तकलीफ नहीं हुई। उन्होंने हमें कितनी ही बार अन्दर जाने से बचाया। हमारे गोदाम में छापे नहीं पड़ने दिए। कभी हमारे ट्रकों को नहीं रोका। ऐसा व्यापार को बढ़ाने वाला व्यक्ति आज हमारे

कस्वे से जा रहा है।' इसके बाद युवक प्रतिनिधि उस्मान खां आए। 'सेठ जी ने ठीक ही फरमाया है, दरोगा जी ने व्यापार को खूब बढ़ावा दिया है। साथ ही जिनके पास व्यापार करने के लिए धन नहीं था, उन्हें बिना पूंजी और कम पूंजी के धन्धों में लगाया, मदद की और किसी लायक बनने में मदद की।'।

'मैं पहले मास्टरी ढूँढ रहा था, पर मुझे नौकरी नहीं मिली। मुझे दफा 109 में पकड़ कर जब दरोगा जी के सामने ले जाया गया तो उन्होंने मुझे शरण दी और सट्टा सम्राट गोरधन के यहां नौकरी पर बिपका दिया और मैं सात रुपये रोज में पच्चीं काटने लगा। यह शुरूआत थी, फिर उन्होंने मुझे खुद खाइवल बनने की सलाह दी। और आज मेरे पास दो बेरोजगार (अशिक्षित) पच्चीं काट रहे हैं। और मैंने उन्हें भी रोजगार दे कर एक देश सेवा का छोटा सा काम किया है।' फिर आए रमेश बच्चू। रमेश बच्चू का नाम शहर के नामी दादाओं में था, जो सिनेमा में ब्लैक करने से लेकर मोटर स्टैंड पर बसों का सामान पार करने के धन्धों में अग्रणी था। रमेश बच्चू ने कहा, 'रामधन जी तो पहले से व्यापारी थे, उस्मान भाई पहले लिखे थे, पर अपन।...! अपन न अण्टी में धैला, न कण्ठी में बिद्या, पर निर्धन के धन...कौन! दरोगा जालिम सिंह। मोटर स्टैंड पर हम्माली करते हुए जिन्दगी बीत रही थी, दरोगा जी ने आते ही हमारा उद्धार किया, और सिनेमा के टिकट बाबू से जान-पहिचान करवा दी। इधर मोटर स्टैंड पर भी अपना धन्धा सही चल रहा है। मेरी समझ से तो दरोगा जी को समाज-कल्याण मन्त्री बना देना ठीक होगा।'।

तालियों की हल्की सी ध्वनि के बाद दरोगा जी कुर्सी पर से उठे, और कहने लगे, 'आपने मुझे जो सम्मान दिया, उसके लिए धन्यवाद! मैंने पुलिस की नौकरी में बारह साल बिताकर एक बात सीखी है, 'रक्षा करो'। क्या! रक्षा करो—किसकी! जो तुमसे मांगे। इसलिए मैंने केवल अपना कर्तव्य पूरा किया है, और पानी की चार के साथ बहता रहा हूँ। मैंने तबादला खुद नहीं करवाया, मेरा तबादला किया गया है,

पर मैं वहां भी अपनी सेवा से आप जैसे नागरिकों का मन जीत लूंगा । धन्यवाद ।' दरोगा जी अपनी जगह बैठ गए । उन्हें व्यापारी और धंधेबाज लोगो की ओर से मेंट दी जाने लगी । और ऐसा लगा कि अब विदाई समारोह खरम होने ही जा रहा है कि किसी ने आकर रामघनजी के कान में फुसफुसाकर कुछ कहा । रामघनजी ने फरमाया, 'साधियो, इससे पहले कि कार्यक्रम समाप्त हो, हमारे ही एक साथी, जो अभी-अभी अजमेर से जमानत पर छूट कर आये हैं, दो शब्द कहेंगे ।' श्री भाई इंकार जी ।'

इंकार जी ने कहा, 'साधियों, मैं अपनी ओर से दरोगा जालिम सिंह का आभार प्रकट करने आया हूं, क्योंकि आज मैं जो कुछ हू, वह दरोगा जालिम सिंह की वजह से हूं । दो साल पहले मैंने एम० ए० किया और एक टुन्ची बाबूगिरी के लिए चम्पलें घिस रहा था । साथ ही साथ कुछ कविता वाजी भी कर लेता था । पर न कोई बाबू गिरी मिली, न कोई कविता कही छपी । मैं निराश था कि दरोगाजी की मेहरबानी हो गयी । उन्होंने मुझे संतोष ट्रान्सपोर्ट में लगा दिया, और कुछ ही दिनों में इतना एक्सपर्ट कर दिया कि मैं संतरों की पेटी में अफीम पैक करके भेजने लगा । नतीजा घोंसी मुहस्ले में मेरा घर, मोटर स्टैंड पर मेरी दुकान, और सड़क पर दौड़ने वाला मेरा आपका सारे शहर का टेम्पो 'स्वाजा की दिवानी 2917 ।' मुझे अजमेर में मालूम हुआ कि साहिबे इल्म जनाब बहादुर जालिम सिंह का ट्रान्सफर हो गया है, तो मुझसे रहा नहीं गया और जमानत कराकर सीधा यहां हाजिर हुआ हूं । मैं दुआ करता हूं कि आप जहा जा रहे हैं, शाद रहें-आबाद रहें ।

थोड़ी देर तालियां बजी, लोग उठने को हुए कि भाई इंकार जी ने फिर कहना शुरू किया, 'एक निवेदन और है इस मौके पर मैं एक छोटी सी चीज सुना रहा हूं, जिसे आप सुनकर ही जायें ।' क्योंकि यह मेरा पुराना शौक है । जालिम सम्पादको ने मेरी कद्र नहीं की, यह एक अलग बात है, तो अर्ज है कि—'

मैं एक ग्रेजुएट होकर भी बड़ा जाहिल था

घंघा करता था, घंघे के हुनर से गाफिल था
मैं एक ग्रेजुएट...

मंसूबे दिल में थे मेरे बहुत कमाने के
लेकिन सरकार का कानून बड़ा कातिल था
मैं एक ग्रेजुएट.....

होलसेनर की तो थी पांचों उंगलियां थी मैं
मुझको फकत सूखा निवाला ही हासिल था
मैं एक ग्रेजुएट.....

जेल जाने के डर से रोंगटे कापते थे
साहिब के आने के पहले जीना मुश्किल था
मैं एक ग्रेजुएट.....

इसके बाद भाइयों सीन बदला है
ऐसे में,

भाई इंकार जी ने खंखार कर कहना शुरू किया ।

ऐसे में शहर दरोगा बनकर आए तुम
राही भटका हुआ अब करीबे मंजिल था
तुमने हम जैसे को तिनके का सहारा जो दिया
फिर तो मंझधार में हासिल हमको साहिल था
तेरे अहसानो करम को मैं कैसे भूल सकू
हर काम आपका तारीफ के काबिल था
रहें हम जेल में या बाहर याद करेंगे सदा
दरोगा जालिम नाम का जो था, बड़ा रहम दिल था

इंकार जी के इस आखिरी खेर के साथ-साथ ही एक बार फिर
तालियों की आवाज गूज उठी, और इसे विदाई-समारोह का समापन
मान लिया गया ।

त्याग ही त्याग

त्याग करना उनका स्वभाव बन गया है। वे यदा-कदा कुछ-न-कुछ त्याग करते जा रहे हैं। त्याग करने से वे निश्चित रूप से हम अन्य बाबू लोगों की तुलना में ऊँचे उठ गए हैं।...और उठते जा रहे हैं। पर त्याग करने की उनकी योजना या प्रगति का अभी दूसरा छोर नहीं दीख पड़ता है।

पहले उन्होंने पान खाना छोड़ा, हमें प्रसन्नता हुई, क्योंकि प्रायः हमें ही पैसे चुकाने पड़ते थे। पहले जब वे हमारे साथ होते तो हम पान की दुकान से सरक लिया करते थे, अब हम निःशक पान की दुकान पर अड़े रहने लगे, पर हमारी कुण्डली में कुछ और ही लिखा था। एक दिन हमने कहा, 'पान चलेगा !'

'हां...पर जर्दी नहीं। सिर्फ मसाला !'

पान के पैसे तो हमने भुगतें ही, उनसे पूछ भी लिया, 'पान आपने छोड़ दिया था न !'

'हां, जर्दे का पान छोड़ दिया, पर सादा पान चल जाता है। असल में मैंने जर्दे का त्याग किया है। इससे मुंह में बास रहती है। बुद्धि का क्षय होता है, और मनुष्य में प्रमाद आता है।'

खैर साठ पैसे में भी यह रहस्योद्घाटन महंगा नहीं था, यह सोचकर हमने आइन्दा के लिए कान पकड़े।

फिर एक दिन उन्होंने हमसे ही पूछा, 'तुम आजकल पान नहीं खाते !'

'क्यों ?'

'वैसे ही पूछ रहा था। मैंने तो अब पान खाना भी छोड़ दिया है।'

उन्होंने सब ही कहा था, उनके मुँह में अब पान का स्थान गुटके ने ले लिया था। अब उन्हें पान में भी दोष दिखने लगे।

धीरे-धीरे दफ्तर के सभी लोगो को पता चला कि उन्होंने इस या उस चीज का त्याग करना अपना नियम बना लिया है। त्याग करने से उन्हें भोग जैसा ही सुख मिलता है।

कभी उन्होंने टमाटर का त्याग किया, कभी करेले का, बेसन का त्याग उन्होंने प्रत्येक गुरुवार के लिए कर रखा है।

उनके मुरीदों में मैं भी हूँ, पर आज तक जान नहीं पाया कि इन सब वस्तुओं के त्याग का कारण क्या है।

इतना अवश्य है कि वे जिस वस्तु का त्याग करते हैं उसका पूरा रिकार्ड रखते हैं। जिन वस्तुओं को त्याग के बाद दुबारा सेवन में लेना पालू किया, उसकी अवधि का हिसाब भी उनके पास है। सिगरेट का त्याग वे दो बार और महात्याग दो बार कर चुके हैं। महात्याग की अवधि एक वर्ष से अधिक होती है। उनके महात्याग की रैंज में अमिताभ बच्चन भी आ चुके हैं, पर गंगा किनारे वाले छोरे की किस्मत अच्छी है कि अब वे दुबारा उसकी फिल्में देखने लगे हैं। एक बार तो उन्होंने टेम्पो पर बैठने का त्याग विधिवत् रूप से कर डाला। अब शामत आई उन लोगों की, जिनके पास स्कूटर या मोटर साइकिलें थी। आते समय चौराहे पर खड़े हो जाते और जाते समय दफ्तर के दरवाजे पर खड़े हो जाते, अब किसकी मजाल जो उन्हें छोड़कर चला जाए। लोग घबराने लगे, कोई कहता, 'मैं सीधा शहर नहीं जाऊँगा, बीच में रुकूँगा।' कोई कहता, 'हवा कम है', पर कोई-न-कोई तो फसता ही था। लिहाजा उनका यह त्याग चलता रहा, परन्तु पेट्रोल की लगातार मूल्य वृद्धि के कारण गाड़ी वालों ने आपस में पूल बना लिये। तब उन्हें अपना त्याग छोड़ना पड़ा। और हमारी ओलम्पिक घाविका की तरह उनका यह महात्याग भी एक उपलब्धि बनते-बनते रह गया।

लोग दफ्तर में आते ही टी० वी० के कार्यक्रमों की बातें करने लगते हैं। वे ज्योतिष की बात करने लगते हैं। उन्होंने टी० वी० का त्याग

कर दिया है। हम सोचते रह जाते हैं, अभी तो टी०वी० इतना पुराना भी नहीं पड़ा, इतनी जल्दी त्याग का शिकार कैसे बन गया...! कभी लोग स्टेशन रोड पर हुई ट्रक-ट्रैक्टर भिड़ंत की बात करते हैं, तो पता चलता है कि उन्होंने स्टेशन रोड का ही त्याग कर दिया है। उस रोड जाते ही नहीं। क्यों ! ...यह पूछने की किसी की हिम्मत नहीं होती। उनके त्याग की सूची बहुत लम्बी है। इसमें फिल्म स्टार माला सिन्हा, काजू, नीले रंग की धारीदार कमीज से लेकर लक्स साबुन, माया अगरबत्ती और राष्ट्रदूत नामक अखबार कभी-न-कभी शामिल रह चुके हैं। त्याग करना और त्याग करने की दूसरो को जानकारी देना दो अलग बातें हैं। जैसे किसी वस्तु का उपभोग करना या उपभोग की जानकारी देना। जानकारी देने के पीछे दम्भ और हीन ग्रन्थियों की ऐसी चाभी होती है, जिसके लगते ही व्यक्ति एक खिलौने की तरह चलने-फिरने व बोलने लग जाता है। कुछ लोग लिखने भी लग जाते हैं। उनके लिए 'हमने आम खाए' शीर्षक से लेख लिखना भी उतना ही सरल है, जितना 'हम अमेरिका हो आए' शीर्षक पर। इसी प्रकार लोग चाहे नौकरी से निकाले गए हों या मंत्री पद से अपने त्याग का वक्तव्य अवश्य दे देते हैं। यह चाभी हर तरह के व्यक्ति को लगती है। दफ्तर के एक अदना से बाबू हमारे श्री मोहन लाल को भी है तो विविध बात नहीं, अफसोस केवल यह है कि त्याग का वखान करने वाला यह क्यों नहीं सोच पाता कि मैं मूर्खता कर रहा हूँ।



आए दिन वहार के

यह भ्रम कल्याण कार्यक्रम के अन्तर्गत चलने वाला कैंटीन है। इसका फैंक्ट्री से गर्म और भ्रूण का सम्बन्ध है। फैंक्ट्री का मालिक मैनेजर है और कैंटीन का मैनेजर मालिक है। मालिक यानि ईश्वर।

जब फैंक्ट्री की हालत अच्छी होती है, तब कैंटीन की हालत पतली रहती है। सभी श्रमिक, सुपरवाइजर और बाबू लोग संच के नियत समय पर अपने काम के स्थान से उठते हैं। काउण्टर से कूपन खरीदते हैं। और लाइन में लगकर रुखा-सूखा जैसा मिले अपने-अपने भाग (या भाग्य) का लेकर उसी में सन्तोष कर लेते हैं। लेकिन आजकल फैंक्ट्री की हालत पतली है। माल बिकना बन्द होता जा रहा है। इसलिए मशीनें चलना कम हो गया है। इसलिए सुपरवाइजर अपने प्रोविडेंट फंड का हिसाब जोड़ने में या को-ऑपरेटिव सोसाइटी से ऋण लेने में सक्रिय हो गए हैं। और श्रमिक...वेचारा! कोई कम्पनी के साबुन से पेंट-कमीज धोने में, कोई जर्दा खैनी की जुगाली में तो कोई टायलेट की सेवाओं का लाभ उठाने में व्यस्त रहता है, और सबकी नजरें घड़ी की सुई पर रहती हैं। बारह बजने से पहले विश्वकर्मा की सभी सन्तानें कैंटीन की शोभा बढ़ाने आ जाते हैं।

कैंटीन के रसोइये, बेटर और काउंटर ब्वॉय सब-के-सब अपनी चुस्ती-फुर्ती के साथ सेवाओं में जुट जाते हैं।

तन्दूरी रोटियों को मजदूर इस तरह एप्रूव और रिजेक्ट करते हैं, जैसे सेंसर बोर्ड फिल्मों को करता है। दाल में तड़का कम होने की शिकायत पर धावेला मच जाता है। दही में खटास का सन्देह हो रहा है। किसी को धावल की प्लेट में धावल कम नज़र आते हैं।

कैंटीन इन्चार्ज सहर्ष इन सभी शिकायतों का निवारण करने का

आश्वासन देकर रेकाहं प्लेयर पर अनूप जलोटा के भजन का कार्यक्रम चालू कर देता है। कुछ दिनों से स्पिनग विभाग की दो मशीनें और बंद हो गई हैं, तब से सलाद में टमाटर और प्याज के अलावा ककड़ी और नीबू भी मिलने लगा है। टेक्सटाईल के लूम अनिश्चितकाल के लिए बन्द हो रहे हैं, तब से सप्ताह में दो दिन खीर और बाकी दिनो रायता मिलने लगा है। दही की प्लेट तो रोज लीजिए।

कुछ अनुभवी व्यक्ति और अधिकांश स्त्रियां जानती हैं कि यदि जच्चा का स्वास्थ्य सुधरता दिखे तो समझो जच्चा कुछ कमजोर होगा, क्योंकि जो भी खुराक गर्भवती स्त्री ले रही है, वह उसी को लग रही है, गर्भ के बालक को नहीं, पर यदि जच्चा कमजोर होती नजर आए तो समझना चाहिए कि बालक स्वस्थ और पुष्ट होगा। इसी सिद्धान्त पर फैंक्ट्री रूपी जच्चा आजकल कमजोर और मरियत होती जा रही है, तब से कैंटीन रूपी बालक का स्वास्थ्य सुधरता जा रहा है।

प्रॉडक्शन मैनेजर बिसूरते मुंह को लिए कैंटीन में आता है पर कैंटीन इन्चार्ज और थ्रम कल्याण अधिकारी हर मेज पर जाकर भोजन पा रहे (अर्थात् खा रहे) व्यक्ति के पास राजीव गांधी और राजेश पायलट की भाति कैंटीन के खाने के बारे में पूछ रहे हैं। कैंटीन की फ्रिज में आम और खरबूजे रखे जाने लगे हैं। हर मेज पर जहां पहले पानी का जग भी गायब रहता था, नमक-मिर्च की डिब्बियों के साथ मुना हुआ जीरा भी उपलब्ध है।

गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्य का प्रमाण इससे बढ़कर क्या होगा कि जहां सुबह केवल चाय मिलती थी, अब सप्ताह में तीन-दिन समोसा, दो दिन आलू-बड़ा, और एक दिन प्याज-कचौरी मिलने लगी है। कैंटीन की सेवाओं का स्तर और गुणवत्ता आजकल देखते बनती है। उत्पादन गिर रहा है। माल विकना कम हो रहा है और...! इधर बिजली बोर्ड ने कारखाने की तरफ लाखों रुपये का अपनी बिजली का पुराना बिल निकाल दिया है। इसके साथ ही कैंटीन में एक ओवन लगा दिया गया है, जिसमें घर से खाना लाने वाले बन्धु अपना स्टील का (प्लास्टिक

का नहीं) लंच बाक्स रखकर गर्मागर्म खाने का साम (या मजा) उठा सकते हैं।

कैंटीन में जाने पर अब लगने लगा है कि इस कारखाने में इतने व्यक्ति काम करते हैं। पहले कई सुपरवाइजर प्लॉट में और बाबू लोग दफ्तर में ही खा-पीकर काम में जुट जाते थे। अब तो क्या कहने हैं...! कैंटीन ब्वायज को देखकर नये मैनेजमेंट ट्रेनीज शर्म से सिर झुका लेते हैं। उनके भविष्य के आगे फैक्ट्री की डगमगाती नैया है। कैंटीन ब्वायज के सामने मलाई की प्लेट, खीर का प्याला, और दही की पूरी भगौनी है।

आला अफसर जो ब्रैंड के दो-चार स्लाइस लिया करते थे, अब तसल्ली से परांठे और सरसों का साग पा रहे हैं। उत्पादन का उतार है, और कैंटीन में बहार है। □

पुलिस और तांत्रिक शास्त्र

छोटे-छोटे गोल-मटोल बच्चों के गले में माता-पिता ताबीज बांध देते हैं। गावों में और कस्बों में यह चलन वीडियो संस्कृति के बाद भी जारी है, और शहरों में भी। ताबीज की या काजल की वैज्ञानिक आधारभूमि पर विवाद करना जरूरी नहीं यह विश्वास की बात है।

ताबीज से बुरी नज़र वाले का मुह काला हो जाता है। हमारा पुलिस के ताबीजों में बहुत विश्वास है। और जिनका इनसे पाला पड़ता है, उन लोगों का भी।

पुलिस के अतिरिक्त टैक्स विभाग, आवकारी, सप्लाय, और इसी तरह के अन्य विभागों में भी भाड़फूक का प्रचलन है।

नव उद्यमी को पुराने पापड़ ताबीजों का महत्व सिखाते हैं। जो गुब की बत्ताई राह पर चलते हैं, वे तर जाते हैं। जो हेकड़ी में रहते हैं, उन्हें नज़र लम जाती है। फिर वे ऐलोपैथी, होम्योपैथी या आयुर्वेदीय पद्धति से अपना इलाज कराते फिरते हैं। पर यह प्रक्रिया थम साध्य और समय साध्य है। इसलिए ताबीज एक उत्तम और सरल उपाय है। व्यवसायी अपने रोजगार को औसाद के समान ही प्रेम करता है। और घन्घे को बुरी नज़र से बचाने के लिए गले में ताबीज बांध लेने को श्रेयस्कर समझता है।

विभिन्न घन्घों में कई प्रकार के गण्डे मुफीद होते हैं। यह सब सावधिक यानि मियादी होते हैं। इनको मुख्य दो वर्गों में समझा जा सकता है। (1) नियमित और (2) अनियमित।

वर्ग नियमित में सर्वाधिक प्रचलित तंत्र शास्त्र में हफ्ता कहा या जाना जाता है। मट्टे में सगे हुए उद्यमी इसी प्रकार के ताबीज को सबसे

पॉवरफुल ओलिया से प्राप्त करते हैं और पूरे सप्ताह तक निर्वन्द होकर अपना व्यवसाय चलाते हैं। हफ्ता ताबीज एक निश्चित भेंट के बाद प्राप्त होता है। और इसे प्राप्त करके फिर स्थानीय अखबार में छपने वाली किसी भी खबर से सम्बन्धित व्यवसायी का बाल बांका नहीं होता।

कई घन्घे ऐसे हैं, जिन्हें अखबार की बुरी नज़र से बचाना जरूरी है। ऐसे घन्घेवाज पहले से ही ताबीज बनवाकर रख लेते हैं, परन्तु कुछ व्यवसायी असावधान होते हैं। वे अपने घन्घे के लिए कोई उपर्युक्त उपाय नहीं करते। कभी-कभी अखबार वाले की बुरी नज़र लग जाती है। और घन्घा संकट में पड़ जाता है। इस संकट की बेला में भी बचाव का यही एक उपाय है। किसी भाड़-फूक करने वाले के पास एप्रोच भिड़ानी पड़ती है।...और फिर से ताबीज प्राप्त कर लिया जाता है।

एक ताबीज ऐसा है, इसकी फीस अधिक होती है, और इसका असर भी एक मास तक रहता है। इसे 'महीना' कहा जाता है। अधिकतर इसका उपयोग चाय के होटल में धराब बेचने वाले दुकानदार करते हैं। ईर्ष्यालु व्यक्ति अखबारों में इस प्रकार के विषय उठाते हैं। इन अखबारों की प्रतियाँ धानों में पहुँचती हैं, पर 'महीना' ताबीज के बल से घन्घे पर आंच नहीं आती।

ट्रेफिक पुलिस एक प्रकार के ताबीज टेम्पो चालकों को देती है। जिसे सीजन कहते हैं। मेले के दिनों में या किसी फिल्मी कार्यक्रम के लिए जब सवारियाँ खचाखच भर के तीन पहिए के टेम्पो के चलने की हस्त आंगी है तो उसके पहले ही दूर दृष्टि वाले चालक ट्रेफिक पुलिस के जानकारों से सीजन नामक ताबीज प्राप्त कर लेते हैं और निश्चिन्त हो जाते हैं।

दूसरे घन्घे में लगे हुए लोगों को भी छोटे-बड़े ताबीजों की समय-समय पर आवश्यकता पड़ती है।...और इसकी व्यवस्था होती-रहती है। ढाबे वाले अपने ग्राहकों की सेवा में सोमरस प्रस्तुत करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। इसके लिए आवकारी विभाग का मंत्रा हुआ ताबीज

उपयोगी होता है। दूध बेचने वालों को अपना घन्घा घुरी नज़र से बचाने के लिए फूड इंस्पेक्टर का गण्डा आवश्यक होता है।

छोटे-छोटे दुकानदार, जो सड़कों के किनारे पर दुकानें जमा लेते हैं, उन्हें भी ट्रैफिक पुलिस से छोटा-मोटा टेम्परेरी ताबीज़ बनवाना जरूरी होता है। इस ताबीज़ की उपलब्धि से वे महिनो तक अपना ठेला सड़क पर इधर-उधर कहीं भी जमा सकते हैं।

तंत्र शास्त्र में गण्डा, ताबीज़, कण्ठा आदि के अलावा यंत्र का उल्लेख भी है। यंत्र का उपयोग पुलिस में भी होता है। पर यह यंत्र चांदी, तांबे अथवा भोजपत्र पर लिखा हुआ अर्कों का योग न होकर दूरभाष यंत्र टेलीफोन होता है। इस यंत्र (टेलीफोन) पर भी पुलिस का बड़ा विश्वास है। पुलिस कर्मों जब किसी अपराधी या सदिग्ध व्यक्ति को पकड़ते हैं, तो घानेदार के पूजा कक्ष में रखा यंत्र टनटनाने लगता है। इस यंत्र में किसी प्रभावशाली यक्ष, गन्धर्व, किन्नर रूपी स्थानीय नेता, एम० एल० ए०, या पार्टी के जिला अध्यक्ष की वाणी जयराम आती है जिसे सुनकर घानेदार के सम्पूर्ण शरीर में कभी करंट दौड़ता है, कभी कान पर जू भी नहीं रेंगती। तब प्रचण्ड अनुष्ठान करने की प्रक्रिया आरम्भ होती है। इसका उपाय भी घाने का रीढ़र या घिसा हुआ पू० डी० सी० बताता है और स्वयं को तथा अपने धंधे को बचाने के लिए अमुक व्यापारी उसी विधि से घूप अगरबत्ती का प्रबन्ध करता है। अब तक की जानकारी यही है कि पुलिस इस प्रकार की घूप अगरबत्ती के बाद प्रमन्न हुए बिना नहीं रहती और व्यापारी का बच्चा (यानि घन्घा) चल निकलता है। □

सीजन किंग

एक तो किंग सीजर था—महाप्रतापी, पराक्रमी और चक्रवर्ती सम्राट। एक किंग सीजन होते हैं, जिन्हें सुविधा की दृष्टि से सीजन किंग कहा जाता है।

ये भी अपने क्षेत्र के खसीफा होते हैं, जैसे मदन महाराज, जो अपनी गुमटी में नए साल की डायरी, सीटिंग कार्ड्स, कैलेण्डर और जन्मी बेचते हैं।

मार्च में वहाँ गुलाल और पिचकारी का बड़ा जमाव नज़र आता है। अप्रैल-मई में पतंगें, फिर उसी में गन्ने का रस, और जल-जीरा बिकने लगता है। जुलाई आते-आते वहाँ बस्ते और बरसातियाँ आ जाती हैं। और छोटे-बड़े छाते। और देखते ही देखते राखी आ जाती है और अलग-अलग घंधों का मौसम अपनी करवट लेता रहता है।

सीजन किंग की यह गुमटी अपने आप में गतिशील और परिवर्तनशील समय की साक्षात् उपासना स्थली होती है।

राखी के बाद इस दुकान में चाय बिकने लगती है और दो महीनों के बाद चूना और पेन्ट तथा कुछ समय बाद पटाखों की भरमार होने लगती है। छोटी पूंजी और हैसियत का व्यापारी मदन महाराज साल भर घंघा करता है, और अपने आपको बनाए रखता है। उसकी दुकान के दोहरे पर सीजन किंग मदन महाराज लिखा हुआ है। कुछ सीजन किंग छुपे रस्तम होते हैं जो भीतर ही भीतर एकाधिक उद्यम करते हुए अपने उद्देश्य की पूर्ति में जुटे हुए रहते हैं।

साहित्य के क्षेत्र में एक ऐसी प्रतिभा से अभी मेरा परिचय हुआ है, जो स्पानीश कवि के रूप में स्थापित होने के लिए प्रयत्नशील है। साथ

ही साथ गायन के क्षेत्र में भी जुगाड़ जमा रखा है। नाटकों का मंचन भी करते हैं, और नगर सेठ के सहयोग से सांस्कृतिक संघ्या का आयोजन करते हैं। मंच पर आना और जमना दोनों जरूरी हैं, इसलिए मंच व्यवस्था उद्योग (अर्थात् टेन्ट हाऊस) का काम भी हाल ही में शुरू कर दिया है। उनकी दूर दृष्टि और पक्के इरादे की प्रशंसा उनका परम विरोधी भी किए बिना नहीं रह सकता। जीविका यापन के लिए लॉटरी की एक छोटी सी दुकान भी चलाते हैं।

सीजन किंग की प्रतिभा अपरिमित होती है, उसे घघे के उतार-चढ़ाव का बराबर ध्यान रहता है। वे चालू घघे के ठप्प होने से पहले ही उसका विकल्प ढूँढ चुके होते हैं। इस सम्बन्ध में हमारे कस्बे की प्रमुख प्रतिभा अलानूर का नाम भी उल्लेखनीय है। वह फिल्मों में ब्रेक चाहता था, पर इसके लिए या तो वह बम्बई जाता या कोई डायरेक्टर भाला-वाड़ में आता—दोनों ही काम नहीं हुए। इसलिए अलानूर, नारायण टाकीज के साइकिल स्टैंड का ठेका लेकर मिनेमा व्यवसाय से जुड़ गया। इंटरवैल में मूगफनी बेचने लगा। उसका टू-इन-वन बिजनेस चल रहा है, पर सीजन किंग केवल दाल-रोटी के लिए ही नहीं पंदा होता। उसे चाहिए नाम, दाम और जाम। इसलिए अलानूर छोटा-मोटा चूना-पुतार्ई का काम भी करता है। पाटन के मेले में पुराने ऊनी कपड़ों को बेचने का धन्धा भी करता है। शादी में बैण्ड भी बजा लेता है। उसको दाम और जाम इन सबसे मिल जाता है। नाम भी मिसता है। फिर भी अलानूर एक छोटे स्तर का सीजन किंग है। मध्यम स्तर का सीजन किंग है, नारायण सिंह। जिसने अपना कैरियर चाय की दुकान पर कप-प्लेट धोने से शुरू किया और देखते-देखते चाय के होटल का मालिक बन गया। फिर इंका का सदस्य बना। जनता राज में जेल गया तो इन्दिरा राज में कार्यकारिणी में आ गया। और राजीव राज में ठेकेदारी कर रहा है। नगर अध्यक्ष के पद पर नज़र रखते हुए होटल चला रहा है। प्रापर्टी डीलर का काम कर रहा है। और... ठेकेदारी...! हाँ, वो भी चत रही है। उच्च श्रेणी के सीजन क्रम में गुरुजी भगवती प्रसाद आते

। अध्यापन करते हैं, उससे अधिक द्यूशन में कूटते हैं। फिर बोर्ड की
 कापिया जांचने के लिए बटोर लेते हैं। और गर्मी की छुट्टियों में पुस्तक
 गन्धा शादी, विवाह, पूजा, कथा अ
 अगणित अध्यापक भी कर लेते हैं
 निवेदन है कि हर साल बोर्ड के 'एक या दो पेपर आउट करवाने' की
 कला में पण्डित जी को विशेष योग्यता प्राप्त है। यह ऐसी गूढ़ विद्या है,
 जिसके कारण आप विद्यार्थी जगत में और उनसे भी अधिक अभिभावक
 जगत में सीजन किंग के रूप में जाने जाते हैं, जिनके नासायक बच्चों की
 बैतरणी को आप पार लगा देते हैं।

यह अद्भुत प्रतिभा यशपाल कपूर में भी थी, और आर. के. धवन
 में भी। कुछ में यह प्रतिभा उल्टे क्रम में होती है, जैसे दांतों के डॉक्टर
 पंजवानी में। दांतों के डॉक्टर की दुकान खोलकर हमारे कस्बे में कई
 सालों तक मक्खियां मारता रहा। फिर उसी क्लीनिक में किराये पर
 साइकिल चलाने लगा। साइकिल किराए पर चली कम, टूट-फूट अधिक
 हुई। तब नल-बिजली के बिल जमा करने का काम करने लगा। वह भी
 नहीं चला तो अब अखबार बेचता है। हर ग्राहक के दांतों पर नजर
 रखता है और उसे अपना स्वनिर्मित कुलंजन का दंतमंजन काम में ले
 की सिफारिश करता है।

सीजन किंग के अलावा सीजनक्वीन भी होती हैं, पर वे लाखों
 एक होती हैं। हमारे कस्बे की जनसंख्या छत्तीस हजार है, इसलिए अब
 ऐसी प्रतिभा उभरकर सामने नहीं आयी है। आने को है (एक तो मे
 पर में ही है) पर अभी से कहना या लिखना उपयुक्त नहीं। [

साहित्य की उपेक्षित विधाएं

(अ) गद्य साहित्य में हर प्रकार के कूड़े-कचरे को विधा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया गया है। परन्तु स्मारिका विधा का अभी तक कोई पक्षधर सामने नहीं आया है। यहां तक कि स्मारिका विशेषज्ञ भी इन विषय में अधिक उत्साही प्रतीत नहीं होते।

क्या विडम्बना है कि कवि सम्मेलन में कवि कविता कम चुटकलें अधिक सुनाते हैं, और बाहवाही लूट लेते हैं (मेहनताना तो खीर लेते ही हैं)।

कथाकार छुक जाने के बाद भी आत्मकथा या जीवनी लिखने में नाम मूना लेते हैं। उपन्यासकार अपनी अभूतपूर्व रचना पर ही उम्र भर आत्मकथा लिखते रहते हैं, लेकिन स्मारिका वाले ! बेचारे ! कभी मूलकर भी स्मारिका का जिक्र नहीं करते। वे तो कर्मनिष्ठ होते हैं, एक स्मारिका की रचना के बाद दूसरी स्मारिका की रचना (या-जोड़-तोड़ में) में प्रवृत्त हो जाते हैं।

स्मारिका ऐसी विधा है, जो अप्रकाशित नहीं रहती। उसकी रचना ही तब होती है, जबकि प्रकाशन राशि की प्रचुर मात्रा में व्यवस्था हो जाती है। स्मारिका किसी अवसर से सम्बन्धित होती है। इसमें उन सभी महानुभावों का उल्लेख होता है, जिन्होंने उस उत्सव, समारोह अथवा जयंती को सफल बनाने में तन-मन-धन लगाया हो।

स्मारिका में अब नए प्रयोग भी होने लगे हैं। पहले स्मारिका में किन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा भेजे गए शुभ कामना पूर्ण पत्रों का सचित्र प्रकाशन होता था। अब इन पत्रों के प्रकाशन से अधिक महत्व कार्यक्रम की विभिन्न समितियों के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सहायकों व सदस्यों के परिचय को दिया जाता है।

फिर एक लेख उस स्थान से सम्बन्धित होता है, जहाँ यह कार्यक्रम हुआ। इसकी रचना देखते ही बनती है। आजकल लेख के साथ-साथ कविता भी चिपका दी जाती है।

खेलकूद प्रतियोगिता की स्मारिका में पिछले रिकार्ड्स दिये जाते हैं। किसी महापुरुष की जयंती समारोह की स्मारिका में उस महापुरुष के जीवन वृत्त की महत्वपूर्ण तिथियों व उपलब्धियों का वर्णन होता है।

स्मारिका विधा में काव्य और गद्य विधा का सुन्दर उपयोग किया जाता है। कवि मूर्खों मरते हैं, और गद्य लेखक द्यूशन करके जीवन यापन करते हैं। परन्तु स्मारिका विधा के खिलंडरों की पाँचों घी में हैं। उन्हें केवल विज्ञापन बटोरने होते हैं। यह कार्य कभी-कभी दूसरे कार्य-कर्ता अथवा पदाधिकारी करके पकी पकायी स्मारिका के सम्पादक (अथवा सम्पादक मण्डल) के आगे परोस देते हैं, और तब साहित्य की यह अद्भुत विधा प्रेस का रुख करती है। स्मारिका सचित्र होती है। इससे स्मारिका में चार चांद लग जाते हैं।

(ब) जन्त्री प्रकाशन को साहित्य के मुख्य द्वार से प्रवेश की सख्त मुनादी है, पर हुआ करे। हर प्रान्त और क्षेत्र में जन्त्री प्रतिवर्ष छप रही है। और बिक रही है। जन्त्री की रचना में ज्योतिष शास्त्र और विज्ञापन बटोर कला का समुचित समन्वय होता है। यह भी एक लाभकारी विधा है। आकार को बढ़ाने के लिए दैनिक उपयोग की जानकारी भी जोड़ दी जाती है। साहित्य वही है, जो पाठक को शान दे और उपयोगी हो।

जन्त्री में रोडवेज की बसें की समय-सारिणी और प्रमुख स्टेशनों का किराया व दूरी दी जाती है। रेलवे का किराया व डाकखाने की जानकारी भी जन्त्री में सम्मिलित होती है। इतनी जानकारी का सागर तीन-साढ़े तीन रुपये मूल्य की जन्त्री रूपी गागर में भर पाना अपने आप में सराहनीय कार्य है। यहीं तक नहीं, जन्त्री में वशीकरण मन्त्र, करामाती रुमाल तथा जादुई अंगूठी प्राप्त करने का पता मूल्य/शुल्क सहित दिया जाता है। खोई हुई ताकत को पाने की दवा, घरेलू सिनेमा मशीन, तथा एकांत

में पढ़ने योग्य पुस्तकें मंगाने के पते भी उदारतापूर्वक दिए जाते हैं। संक्षेप में जन्त्री विधा साहित्य की एक उपयोगी विधा है, जिसे दुराग्रही साहित्यकारों ने आज तक समुचित स्थान नहीं दिया है।

(स) विद्यालय पत्रिका अपने आप में साहित्यिक रचना है। एक ओर कामर्स ग्रेजुएट या कथित कवि जो (मूलतः साइन्स या बहुधा कानून जैसे नीरस विषयों के स्नातक होते हैं) साहित्यिक पत्रिकाएं निकाल कर गाल बजाने लगते हैं तो दूसरी ओर सरस्वती के मन्दिर में जन्मी विद्यालय पत्रिका को किसी भी साहित्यिक विधा में नहीं गिना जाता। कारण केवल इसके सृजनकारों की वैराग्य भावना अथवा पर्याप्त पक्षधरो का अभाव है।

विद्यालय की पत्रिका में प्रधानाचार्य के चित्र प्रचुर मात्रा में होते हैं। वे एक कुर्सी पर बैठे होते हैं, और उनके बाजू में वरिष्ठ अध्यापक बैठे होते हैं। एक पोज में प्रधानाचार्य पत्रिका के सम्पादक मण्डल के नाल नजर आन्दे सी। एक चित्र में छात्र संसद के कार्यकारिणी के सदस्यों के मध्य भी दृष्टिगोचर होते हैं। चित्रों में चित्र एक सर्व श्रेष्ठ छात्र का भी होता है। किसी मंत्री के विद्यालय भ्रमण के अवसर पर माला पहनाते हुए चित्र में भी छात्र संसद का नेता या प्रधानाचार्य (अथवा दोनों भी) एक चित्र में दिखाई देते हैं।

इसके बाद गद्य खण्ड में कहानी और लेख का कचूमर निकाल देने वाली रचनाएं स्थान पाती हैं। इसके सृजक विद्यालय उद्यान की कोपलों (प्रथम वर्ष के छात्र) से लेकर बूढ़े ठूठ (रिटायर्डोंन्मुखी अध्यापक) होते हैं। पद्य की सम्पादिका प्रायः अध्यापिका होती हैं और इसमें काव्य की खेती का मूरिया विखेरा जाता है। हिन्दी के बाद आंग्ल भाषा की सेवा की जाती है जिसे कम्पोजिटर के अलावा कोई नहीं पढ़ता। पत्रिका में विद्यालय परिवार के समस्त सदस्यों का वर्णन भय शिक्षा और पद को दिया जाता है। इस पत्रिका का प्रकाशन कर विद्यालय साहित्य की निरंतर सेवा करता है।

स्मारिका का प्रकाशन विज्ञापन राशि से होता है और इस प्रकार

इसका मूल्य पहले ही चार्ज कर लिया जाता है। स्मारिका विज्ञापन राशि के वृक्ष से लिपटी एक लता है। विद्यालय पत्रिका स्कूल के बजट में से छापी जाती है। यह उस दिब्बे के समान है, जिसमें 400 ग्राम तेल आता हो, पर 500 ग्राम तेल डाला जाता है। इनके प्रकाशन पर निमंमता पूर्वक पैसा बहाया जा सकता है। जन्त्री इन दोनों से थोड़ी भिन्न रचना है, जो शादी की तारीखें, नूतन गृह-प्रवेश के अवसर (शुभ अवसर) आदि की जानकारी से लेकर प्रधानमंत्री के वर्षफल तक की जानकारी देने के आदर्श पूर्ण लक्ष से तैयार की जाती है, और गली-गली में बेची जाती है।

देखना यह है कि ऐसी अनुपम कृतिया कब सद्-साहित्य की गणना में स्थान पायेंगी !



अधिकारियों के गुप्त भेद

अधिकारियों के भेद अधिकारी भी नहीं जानते । फिर भी भौगोलिक दृष्टि से इन प्राणियों को दो रूप में जाना जा सकता है । स्थानीय अधिकारी और प्रवासी अधिकारी । दोनों संज्ञाओं के अर्थ सापेक्षिक हैं । स्थानीय अधिकारी कालांतर में प्रवासी अधिकारी हो जाता है अथवा हो सकता है । प्रवासी अधिकारी प्रायः प्रवासी ही बना रहता है परन्तु किन्हीं परिस्थितियों के फलस्वरूप स्थानीय अधिकारी बन जाता है । दोनों में अन्तर है, प्रवासी अधिकारी, शुद्ध सरसों का पोस्टमेन ब्राण्ड अधिकारी है । स्थानीय अधिकारी रेपसीड ऑयल अथवा तारामिरी मिश्रित है । फिर भी उसके अधिकारी होने की स्थिति में शंका नहीं की जानी चाहिए ।

सरकारी सस्याओं में प्रवासी अधिकारी को स्थानीय होने में अधिक परिश्रम करना पड़ता है । निजी संस्थानों में स्थानीय अधिकारी प्रायः कम होते हैं । यहाँ प्रवासी अधिकारी का 'कोटा' अधिक होता है । इनमें से ही कोई महाबली बेताल अपनी तरकीबों से स्थानीय अधिकारी बन जाता है । सरकारी चिकित्सालयों में प्रायः प्रवासी अंगद के पैर की भाँति अचल हो जाते हैं । शिक्षा संस्थाओं में भी यह गुण बहुतायत से सुलभ है । कुछ भूखण्ड भी बड़े उर्वरक होते हैं । यह उर्वरकता भी प्रवासी को स्थानीय बनने के लिए प्रेरित करती है, फिर स्थानीय पत्रकार, नेता और सम्पादक के नाम पत्र लिखने वाले जागरूक नागरिक भी ऐसे अधिकारी का बाल बाका नहीं कर पाते । हाड़ौती भूमि इसका ज्वलंत उदाहरण है । निजी संस्थानों में स्थानीय अधिकारी बहुत कम मात्रा में पाया जाता है । निजी संस्थानों में स्थानीय कारीगर, मजदूर, बेलदार, बंधानी, बाबू आदि सब मिल जाएं लेकिन स्थानीय अधिकारी कम मिलेंगे । स्थानीय

सुपरवाइजर या बाबू को ही जब प्रबंधक वर्ग अपनी कृपा का पात्र बना लेता है तो स्थानीय अधिकारी अस्तित्व में आता है। स्थानीय अधिकारी प्रमोशन होते ही साइकल पर आना छोड़ कर स्कूटर ले लेता है। फर्नीचर सम्बेड़ी प्राप्त होते ही पंखे के स्थान पर कूलर सेता है। टिप्पा, कैंथूनीपोल आदि स्थान छोड़कर वल्लभ नगर में रहने लगता है। उसके बच्चे सेन्ट जोन्स में ज्ञान अर्जन करने जाने लगते हैं। उसकी अर्द्धांगिनी ब्यूटी पॉलर जाती है और नाश्ते में स्थानीय अधिकारी पराठे के स्थान पर ब्रेड-बटर खाने लगता है। ऐसा वह किसी चिकित्सक के परामर्श पर नहीं करता। वस्तुतः उसके ज्ञान चक्षु हाल ही में खुल चुके होते हैं।

उसकी मानसिक रुचि भी बदल चुकी होती है। वह 'कल्याण' का वार्षिक मुल्क समाप्त होने पर नवीनीकरण नहीं कराता। रीडर्स-डाइजेस्ट पढ़ने लगता है। उसके बच्चे पोयम सीखते हैं और पत्नि, वह भी अब फेमिना अथवा शिफ से ही अपनी मानसिक खुराक ग्रहण करती है।

बरसों कचौरी और घुआदार नमकीन खाते रहने, कड़क चाय पीने तथा जर्दे युक्त कस्तूरी मजन करने का अभ्यस्त सद्योन्नत अधिकारी अब नगर के प्रतिष्ठित चिकित्सकों से मोडकल कराने लगता है। और एवरी-थिंग ऑलराइट पाकर चिन्तित रहने लगता है। ऐसी अवस्था में वह मेडिकल सम्बिडी से वंचित रह जाएगा। परिस्थितियाँ सदैव प्रयत्नशील का साथ देती हैं। फर्नः शनैः उसके मेडिकल बिल भी कार्यालय में आने लगते हैं। फिर उसे पता लगता है कि वह यदि चाहे तो दो वर्ष में एक बार छुट्टी मनाने के लिए कहीं भी जा सकता है और यह खर्चा उसे कम्पनी देगी। तब वह इसका भी उपयोग करता है।

देखा जाए तो स्थानीय अधिकारियों के प्रथम दो वर्ष ही स्वर्ण काल होते हैं। उसके बाद वह वापस अपनी जगह आ जाता है।

स्थानीय अधिकारी जर्दे के पान खाने का अभ्यस्त है। खाएगा। कचौरी खाने को मन ललचाता है। कब तक रोकेगा? एक दिन वेस्पा रोक कर महावीर नमकीन भण्डार के आगे खड़ा हो जाएगा। उसकी पत्नि ब्यूटी पॉलर जाना छोड़ देती है। रीडर्स-डाइजेस्ट आना बंद हो

जाती हैं। यच्चे भी पोयम भूलकर स्कूल में मीसे 'श्लोक मंत्र' उच्चारित करने लगते हैं। स्थानीय अधिकारी को आपातित अधिकारी बराबरी का दर्जा भी नहीं देता।

यह बोनाफाइड है। यह प्रोमोटिड है। अन्तर कहा जाएगा।

अब स्थानीय अधिकारी बाबू से, बंधानी से सम्बन्ध मधुर बनाने लगता है। पर... प्रथम दो वर्ष की थोड़ी सी बेवफाई को बाबू बंधानी आदि नहीं भूलते। तब वह अपने ही जैसे किसी स्थानीय अधिकारी को ढूँढ निकालता है। प्रत्येक संस्थान में एक-आध मिल भी जाता है। अब लोकदल (कर्पूरी ठाकुर) का गठन होने लगता है। स्थानीय अधिकारियों की अलग मण्डली होने लगती है। यह लच से पहले ही केबिन में बैठ कर लंच कर लेते हैं और लच से कारखाने के बाहर आकर पान खाकर या गन्ने का रस पीकर तृप्ति प्राप्त करते हैं। कुछ स्थानीय अधिकारी मूलतः प्रकृति प्रेमी होते हैं। वे नहर तक जाकर कपड़े धोने या नहाने वाली रूपसियों के दर्शन करके नयन सुख प्राप्त करते हैं। जिनको समय पर फैक्ट्री में पहुँचने की जल्दी होती है। वे फल-तरकारी बेचने वाली नव शौवना से अमरुद-सन्तरे लेकर ही सन्तोष कर लेते हैं।

प्रवासी अधिकारियों की अपनी मण्डली होती है। ये प्रायः पर्याप्त शिक्षित होते हैं। इनके ग्रेड भी अधिक होते हैं। लच में प्रवासी अधिकारी रेडियो या अखबार की सुबह सुनी या पढ़ी खबरों पर गर्मागर्म बहस करते हैं। कार के सम्बन्ध में बात करते हैं सेयर की बातें करते हैं। प्रवासी अधिकारी चौराहे तक नहीं जाते। कोई धूम्रपानग्रस्त अधिकारी अधिक से अधिक गेट के बाहर आकर सिगरेट अवश्य पी लेता है। प्रवासी अधिकारी केवल अंग्रेजी फिल्म देखता है। सांस्कृतिक कार्यक्रम, कला प्रदर्शनी, आदि उसके क्षेत्र हैं। वह लायन्स क्लब का मॅम्बर होता है। परन्तु गतिशील ससार में कोई असम्पृक्त (इलिट) नहीं रह पाता। प्रवासी अधिकारी जहाँ का पानी पीता है, वहाँ का प्रभाव उसके चिन्तन पर होने लगता है। देशकाल की परिस्थितियाँ उसका साथ देती हैं। मोरारजी जाते हैं, तो चौधरी जी आते हैं। चौधरीजी गांवों से सबधित

योजना बनाते हैं। कारखाने का प्रबन्धक वर्ग इन योजनाओं के अन्तर्गत कारखाने से 15 कि.मी. व्यास के बाहर की सीमा में बसे किसी गांव में कर मुक्त खर्चा करने को तत्पर हो जाता है। गांव में जनसभा भवन, चिकित्सा भवन, पुलिया, विद्यालय बनाने अथवा चम्बल के घाट अथवा किसी जीर्ण मन्दिर का उद्धार करने के कार्य किये जाते हैं। मुख्य अभियन्ता, सिविल अभियन्ता, विद्युत अभियन्ता, यह अभियन्ता, वह अभियन्ता अब कम्पनी की कारो में गांवों की ओर लपकते हैं। सरपंच के साथ फोटू खिचवाये जाते हैं। सरपंच को कारखाने में बुलाया जाता है। सरपंच उन्हें गांव में बुलाता है। प्रणय सम्बन्धों में तेजी से सघनता आ जाती है, और.....।

मुझ जैसे बाबू को छः मास या साल भर बाद पता चलता है कि कोयम्बतूर वासी मेहन, मिदनापुर वासी मुखोपाध्याय ने भी कोटा जिले के पिछड़े गांव में राष्ट्र की हरित क्रान्ति में सक्रिय सहयोग देने के लिए 20 बीघा या 40 बीघा जमीन खरीद ली है। सरपंच का पुत्र और तहसीलदार का भांजा टेक्ससाईल में सुपरवाइजर लग जाते हैं। चौधरी जी चले जाते हैं। ज़मीनें उन्हीं की रह जाती है। वे स्थानीय बन जाते हैं।

कभी-कभी उद्यत प्रवासी अधिकारियों की स्थानीय बनने की लगन इतनी आप्रहृपूर्ण होती है कि उनका शिकार स्थानीय अधिकारी को बनना पड़ जाता है। इज्राईल बनाम फिलीस्तीन युद्ध में सेबनान पिटा जाता है। स्थानीय अधिकारी श्रेष्ठतर भविष्य के लिए इच्छुक होता है। उसे छीटे मार कर ठण्डा कर दिया जाता है। और जो यही चरणों में पड़ा रहना चाहता है, उसे कम्पनी के अन्य कार्यालय में भेज दिया जाता है। उसे अधिकारी बने रहना है तो जाता है, वर्ना...नई धान-मण्डी में दलाली करने लग जाता है। □

आशियाना ढूँढ़ते हैं

मकान मालिक और किराएदारों के सम्बन्धों पर बहुत कम लिखा गया है। इसका मुझे दुख नहीं, पर भान जरूर है। किराएदार और मकान मालिक के सम्बन्धों की क्या To Let अथवा 'किराए पर खाली है' की तस्ती से शुरू होती है। वह उसे देख कर अन्दर जाता है, जहाँ मकान मालिक या उसकी माँ, पत्नी, बहिन या रखैल अथवा बाप, बेटा, या हरामजादा, गोया कोई भी आकर किराएदार को उस घंटाशिक को दिखाता देते हैं, जिसमें उसे अपनी जिन्दगी के अगले कुछ या दोष सारे दिन गुजारने हैं। उसकी अफल पर पत्थर पड़ जाते हैं और वह हंसते-हसते एडवांस किराया देकर अपनी मौत का सामान ले चलने के लिए पुराने मुकाम पर आ जाता है।

यह उसके हसने, गाने या मुस्कुराने का आखिरी दिन होता है। इसके बाद... वह पिंजड़े का पंछी बन जाता है। जिसका दर्द गीतकार प्रदीप के सिवा कोई नहीं जानता।

मकान मालिक को एक बीमारी होती है, उसके मकान मालिक होने की। इस स्थिति में वह किराएदार को कभी अपना बेटा कभी अपना बाप और कभी गुलाम समझने लगता है। कभी उसे नल फालतू चलता हुआ अखरने लगता है, कभी लाईट व्यर्थ जलती हुई दिखाई देती है।

किराएदार कितना भी रिजर्व रहना चाहे, मकान मालिक या उसकी टीम के दूसरे आर्टिस्ट उसे कही न कही फंसा ही लेते हैं। जब मकान मालिक किराएदार के पक्ष में टिप्पणी करती है तो उसकी कुचली हुई आत्मा थिरकने लगती है। लेकिन किसी दिन वही देवी जब किराएदार के बाथरूम में अधिक समय तक नहाने पर बरसने लगती है तो बेचारे की आत्मा थिरकना भूलकर फिर से पसर जाती है। जब किराएदार

कमाऊ पूत की तरह हर महीने की तारीख को किराए की रकम मकान मालिक की हथेली पर रखता है तो पोपलाए मुंह धाला बन्दा किराएदार के सम्मान में दो शब्द व्यक्त करता है, फिर किसी महीने जब एक से दो और दो से चार तारीख तक भी किराया मकान मालिक की हथेली पर नहीं पहुंचता है तो उसके बाम अंग फरकने लगते हैं। और 'राग तकाजा' में मकान मालिक ऐसी ठुमरी सुनाता है कि किराएदार का आत्म-सम्मान मजबूरी के बिल में दुबक जाता है।

मकान मालिक या उसके खिलडरे कच्छे-बनिमान में घूमते रहते हैं, पर किसी किराएदार की मजाल नहीं जो, जो राजामा या लुगी लगाए बिना बाथरूम से बाहर निकल जाए। केरेक्टर का सवाल आ जाता है। रेडियो का बाल्यूम काबू में रहना चाहिए। साईकिल या स्कूटर सीधा खड़ा होना चाहिए। बर्ना ट्रेफिक इन्स्पेक्टर रूपी मकान मालिक चालान करने पर उतारू हो जाता है।

कुछ मकान मालिक साक्षात् अवतार होते हैं। नल-बिजली के पैसों की बात पहले गोल कर जाते हैं। 'आपस की बात है जी, जो बिल आएगा, आपस में बांट लेंगे।' लेकिन बावरे किराएदार को पता नहीं होता कि उसके कमरे में लैंप जलेगा या पंखा घूमेगा। अधिक हुआ तो रेडियो भ्रक मार लेगा पर उसका हरिश्चन्द्रमय मकान मालिक अपने टी० वी०, फ्रिज, और मिक्सी का उपभोग इस हद तक करेगा कि बिल का पैसा चुकाने में किराएदार के छक्के छूट जायेंगे।

मकान मालिक कुछ हद तक 'जिया-उल-हक' का डूप्लीकेट होता है। वह किराएदारों का आपस में मिलना-जुलना पसन्द नहीं करता। उसे जाने क्यों यह भय रहता है कि किराएदार आपस में मिलकर उसे मकान से बेदखल कर देंगे। जिस मकान के किरायेदार इस मर्म को समझ लेते हैं, वे सदैव मकान मालिक की कृपा के पात्र बने रहते हैं।

मकान मालिक का अंदाज अपने पतिदेव से भी सबाया होता है। नए किरायेदार की गृहिणी को पुराने किरायेदारिन की खोट से अवगत कराना और समय-समय पर सतर्क कराते रहना वह अपना कर्तव्य या

अधिकार सम्भक्ती है। इस पर भी जब दो किरायेदार महिलायें आपस में हँस बोल लेती हैं तो मकान मालकिन के दिल पर छुरियाँ चलने लगती हैं।

मकान मालिक महगाई सूचनाक के प्रति सदैव जागरूक रहता है। प्रतिवर्ष या प्रति दो वर्ष में किराये की राशि को संशोधित करना उसके लिए अनिवार्य है और किरायेदार के लिए ऐच्छिक। पर दूसरे मकान नूढ़ने का असाध्य कर्म करने में असमर्थ किरायेदार इस संशोधन को आपात्काल में हुए सविधान में संशोधन की तरह मान लेता है।

मेरे साथ एक कामरेड भाई रहते थे। फँवट्टी में उन्होंने प्रबन्धको के पसीने निकलवा दिए थे, पर मकान-मालिक के आगे साचार थे। मकान मालिक अपने आप में एक शेर होता है, जिसके आगे किराएदार मेंमने से अधिक हैसियत नहीं रखता। पार्टी के अध्यक्ष को भी दुनिया दिखावे के लिए किसी सदस्य को निकालने के लिए कुछ गम्भीर आरोप लगाने या लगवाने पड़ते हैं, तब कहीं जाकर अमुक सदस्य का पत्ता कट पाता है, पर मकान मालिक जब चाहे किराएदार को बिना 'कारण बताओ नोटिस' दिए मकान के बाहर कर सकता है। इस मामले में कुछ मकान मालिक बहुत घुटे हुए होते हैं। सबसेना साहब ने विधिवत् रूप से किराएदार निकालने के नायाब नुस्खे बताने की एक 'परामर्श' सेवा संस्था खोल रखी है। यह सब नुस्खे वे खुद आजमा चुके हैं।

पहले वह अपने बच्चों को किराएदार के कमरे के बाहर खेलने-कूदने, बच्चा साइकिल चलाने, गेंदबाजी करने के लिए भेजते हैं। इस पर भी यदि किराएदार को कोई आपत्ति न हो तो और वह मूढ़मति मकान मालिक का मन्तव्य न समझे तो उनकी अगली कार्यवाही कार्य करने लगती है जिसमें किदाएदार की पत्नि या युवा बहिन के खिलखिलाकर हँसने से लेकर साड़ी पहिनने या न पहनने पर टिप्पणियाँ शामिल होती हैं। फिर कुछ दिन बाद अन्य किराएदार महिलाओं में इस आशय की विज्ञप्ति जारी की जाती है कि रात को खटखट जूते पहने कोई आया था या ठकठक दरवाजा बजा रहा था, फिर पप्पू के पापा के जागकर

बाहर आने पर एकदम भाग गया आदि...की सनसनी खेज खबरों का प्रसारण शुरू हो जाता है। यदि शिवभक्त किराएदार दम्पति यह गरल भी पी जाए तो मकान मालकिन पप्पू के पापा को प्रभावी कार्यवाही करने का आदेश, परामर्श या निवेदन करती है।

अब क्या में मोड़ आता है, और महामहिम मकान मालिक खुली कार्यवाही करते हैं। कभी दरवाजा बन्द करने और खोलने पर, खटखट की अनावश्यक आवाज पर, दरवाजा, तोड़ने की किराएदार की धदनीयता पर एतराज किया जाता है। कभी रात को मकान का सदर दरवाजा खुला रहने देने की लापरवाही पर विरोध प्रकट किया जाता है। कभी आंगन में तार बांध कर कपड़े सुखाने से, मकान को गन्दा करने से किराएदार को रोका जाने लगता है। गर्ज यह कि किराएदार के ज्ञान चक्षु खोल दिए जाते हैं। अगर किराएदार महा अड़ियल हुआ तो एक शुभ प्रभात या शुभ रात्रि के समय मकान मालिक क्षर्माजी या बर्माजी अथवा कोई भी कल्याणजी आनन्दजी नामक किराएदार को एक महीने में खाली कर देने की चेतावनी दे देते हैं, और.....बेचारा किराएदार फिर से To Let का बोर्ड दूढ़ने लग जाता है। □

कर-कमल

भाजकल हर शुभ काम कर कमलों से होता है। कर कमलों से सम्पन्न हुआ काम ही अखबार में स्थान पाता है, और चर्चित होता है। हमें भी कर कमलों की तलाश थी। हमारे मीहल्ले में कुछ उत्साही युवकों ने एक वाचनालय की स्थापना समिति बनाई थी। हजारी लाल जी सोनी ने अपने बाड़े में वाचनालय की स्थापना के लिए सशर्त स्वीकृति दी थी। उनकी शर्त मानने में सरल थी, इसलिए स्थापना समिति ने उसे मान लिया था, और वाचनालय का नाम हजारी लाल जी सोनी के देवतुल्य ससुर जी के नाम पर हीरा लाल सोनी वाचनालय रखा जाना निश्चित हुआ। स्थापना समिति के ग्यारह सदस्यों ने 10/- रुपये प्रति-माह चंदा देना शुरू किया। दो माह के बाद कोष में समिति के सदस्यों तथा अन्य दान धीरों के सहयोग से 300/- रुपये एकत्र हो गए पर उद्घाटन के लिए कर कमल नहीं मिले।

स्थापना समिति के अध्यक्ष ने हमारे मीहल्ले के नेताजी श्री ढक्कन लाल से सम्पर्क किया। वाचनालय की स्थापना के विचार से वे पुलकित हुए और भरपूर सहयोग देने का आश्वासन दिया। यह कोरा आश्वासन लेने हमारे अध्यक्ष मक्खन लाल जी घर से नहीं निकले थे, इसलिए उन्हें लपेटने लगे। लपेटने में मक्खन लाल जितने निपुण थे, ढक्कन लाल लिपटने में उतने सरल चित्त थे। बात उद्घाटन पर पहुंच गयी। मनो-भाव को समझकर ढक्कन लालजी ने उद्घाटन करने के लिए आने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। मक्खन लालजी ने भरपूर सहयोग को स्पष्ट करने की प्रार्थना की। 200/- रुपये पर बात ठहर गयी। जब कार्य-कारिणी को यह समाचार मिला तो अधिकांश सदस्यो ने मक्खन लाल

जी को सौदा पटाऊ अभियान में सफल होने पर बधाइयां दी । निश्चित किया गया कि कार्यकारिणी के सभी सदस्यों के उपस्थित होने पर उद्घाटन तिथि, समय और अन्य कार्यक्रम निश्चित कर लिये जायें ।

जब अन्य सदस्यों को यह मालूम हुआ तो उन्होंने क्रोध से फुफकार कर कहा, 'हम उस उच्चक्के ढक्कन लाल को वाचनालय में फटकने भी न देंगे । उद्घाटन करने की तो बात ही और है ।'

'पर हम उनसे एडवांस भी ले मरे है ।'

'तो आप मरें, हम नहीं मरने वाले । वाचनालय साहित्य से सम्बन्धित मामला है । हम स्थानीय 'प्रचण्ड साप्ताहिक' के सम्पादकजी को बुलायेंगे, वे भूतपूर्व स्वतंत्रता सेनानी भी हैं ।'

'पर क्या, वे भी दान-दक्षिणा देंगे !' एक अर्थ कामी ने पूछा ।

'तुम्हे हमेशा पैसे की पड़ी रहती है । अरे गरिमा भी तो कोई चीज है ।'

बाद-बिबाद ने हाथापाई का रूप न लिया, पर कार्यकारिणी दो घड़ों में विभक्त हो गयी । तब मध्यमाग्रियों ने समझौते के प्रयास से कहा, 'यदि आप प्रचण्ड के सम्पादक जी को बुलाते हैं, तो बुलायें, पर सहयोग राशि दो सौ से अधिक आना चाहिए ।'

सदस्यगण सम्पादक जी के घर पहुंचे तो वे ईश्वरोपासना में बैठे थे । जैसे ही उन्हें पता चला, उछलकर बैठकखाने में आ कूदे । उनका पत्र कई दिनों से बन्द पड़ा था । वे आजकल प्रॉपटी डीलर का कार्य कर रहे थे । उनसे जब सहयोग राशि देने को कहा गया तब उन्होंने तन और मन से सहयोग देने का आश्वासन दिया । 'भैया धन के अभाव में तो 'प्रचण्ड' शिथिल होकर पड़ा है । वाचनालय के लिए आपको क्या सहयोग दूं ?'

'अमल में हम वाचनालय का उद्घाटन आपसे कराना चाहते हैं...।'

उद्घाटन के प्रस्ताव को जानकर उनके चेहरे पर वह चमक आयी जो राशन की दुकान में शक्कर आ जाने से आम उपभोक्ता के मुख पर आ जाती है ।

‘अच्छा-अच्छा, तो उद्घाटन कराना चाहते हैं आप ! भई क्यों हमें कांटो में खींचते हो, यह कार्य तो मन्त्री और अधिकारियों की शोभा देता है । फिर भी आपके आदेश का पालन करूंगा । कहिए, कब उपस्थित हो जाऊं !’

उनकी गले पड़ने वाली सत्परता देखकर सदस्यगण घबराए । सहयोग राशि की बात याद दिलायी ।

‘वाचनालय मौहस्ले स्तर का है ।’, उन्होंने विचार करते हुए कहा, ‘सो चलेंगे ।’

‘सो चलेंगे नहीं, अभी बताएं ।’

‘मैंने अर्ज किया ना सो चलेंगे ?’

सुनकर सदस्यों को बड़ी निराशा हुई । कहा, ‘सो मे तो कई लोग उठ पड़ रहे हैं । दो सो कहें तो अभी फंसला होता है ।’

वे मान गए ।

लेकिन अब कार्यकारिणी के सदस्य संकट में थे । एक ओर नेता डक्कन लाल से अर्नेस्ट मनी से लो थी, दूसरी ओर सम्पादकजी को बुक कर लिया गया था । एक कार्यक्रम और दो-दो उद्घाटन करने वाले । आखिर एक कल्पनाशील युवक ने हल निकाला । पैसे किसी के वापस न करो । ऐसे समय पर उद्घाटन करवाया जाए कि एक शहर के बाहर हो । नेताजी के घर एक सदस्य पूछताछ करने गया । उसे देखते ही नेताजी ने पूछा, ‘भई कब हो रहा है, उद्घाटन कार्यक्रम !’

‘सब संधार है, केवल फर्निचर बन के आ जाए, फिर आपको सूचित कर देंगे ।’

नेताजी ने कहा, ‘ठीक है ।’

सम्पादक जी की तरफ जाते, तो वे भी उनसे उद्घाटन कार्यक्रम के बारे में पूछते । आखिर एक बात समझ में आ गयी । सम्पादक जी पर उनके साढ़ूजी ने मुकदमा चलाया हुआ था, उसकी तारीख का पता लगाया गया, सितम्बर की ११ तारीख थी । सम्पादक जी से पूछा गया, ‘सितम्बर माह के प्रथम सप्ताह में विचार है, आप उपलब्ध रहेंगे !’

‘हां हां, क्यों नहीं !’, उन्होंने गद्गद् होकर कहा ।

‘कहीं आने-जाने का कार्यक्रम तो नहीं ।’

‘हां एक अदालत की तारीख है, सो बच्चे को भेज देंगे ।’

उद्घाटन के प्रति उनका मोह देखकर सदस्यगण दंग रह गए । इधर कोपाध्यक्ष जी के तकाजे पर टेमीफोन आने लगे । नेताजी से दुबारा मिले । मुंह लटकाकर कहां, ‘हमारी कार्यकारिणी में आपसी कलह मची है, वाचनालय की स्थापना की योजना चौपट होने की है, उद्घाटन अनिश्चित है ।’

नेताजी ने बहुत उतार-चढ़ाव देखे थे । बोले, ‘यह सब तो चलता रहता है, आप तो जब कहें, मैं हाजिर हो जाऊंगा ।’ और उन्होंने अपनी लड़की की शादी का कांड भी उन्हें पकड़ा दिया । उनकी आत्मीयता से गद्गद् होकर कोपाध्यक्ष घर लौटे पर उत्तेजित सदस्यों ने शाम को ही उनका मूड ऑफ कर दिया । ‘हम ढक्कन लालजी की टांग तोड़ देंगे ।’ ‘यह सुनकर उन्हें बड़ा दुख हुआ ।’ ‘टांगें ढक्कन लालजी की टूटें या न टूटें, हम कहीं मुंह दिखाने लायक न रहेगे ।’ पर विवश थे । वाचनालय समिति के अध्यक्ष पद को छोड़ा भी तो नहीं जाता ।

कुछ दिनों बाद उनकी किस्मत साय देने लगी । पता चला कि सम्पादक जी की तबीयत खराब है । हाल-चाल पूछने के बहाने गए । वास्तव में तबीयत कुछ खराब थी । बुखार भी था । डॉक्टर ने अधिक बोलने-चालने से मना कर दिया था ।

कोपाध्यक्षजी को बैठने का इशारा किया । तबीयत के लिए पूछा तो वे क्षीण स्वर में बताते रहे । कोपाध्यक्षजी को मन में संतोष हुआ । तभी उन्होंने पूछा, ‘वाचनालय का क्या हुआ !’ (कोपाध्यक्षजी मन ही मन सोच रहे थे कि चलो यह तो पीछा छूटा...मगर)...

‘आप अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखें, वाचनालय का क्या है ?’

‘वाचनालय का क्या है ! क्या कंसे नहीं है ! अरे खुल गया क्या !’ वे एकदम तैश में आकर बोलने लगे, ‘उद्घाटन कब हो रहा है !’

‘अच्छा...अच्छा उद्घाटन ! हम आपको समय पर सूचित कर देंगे ।’ उनका पक्का इरादा देखकर कोपाध्यक्ष दंग रह गया ।

तभी हमारे कल्पनाशील मित्र ने कहा, 'क्यों न नेताजी की लड़की की शादी के दिन का कार्यक्रम नियत कर लिया जाए। मगर शक यह था कि नेताजी को सदस्यों की नियत पर शक न हो जाए। खैर नेताजी के पास एक सदस्य गया। 'क्या करें कि कार्यकारिणी ने ऐसा विकट दिन नियत किया है कि कुछ कहते नहीं बनता.....।'

'क्यों क्या हुआ !'

'6 दिसम्बर को उद्घाटन तय किया है।'

'तो क्या हुआ, आ जायेंगे।'

'बेबी की शादी है.....।'

'तो क्या हुआ, आ जायेंगे। समय।'

'शाम को आठ बजे।'

'तो क्या हुआ, आ जायेंगे।'

उनका 'आ जायेंगे' सुनकर हमारे कोपाध्यक्षजी के मुंह से अनायास ही 'ओह भरा' निकल गया। जिनका मतलब केवल वे ही जानते थे।

'आप निश्चिन्त रहें, और कार्य में जुट जायें।'

'आपको असुविधा होगी !'

'तो क्या हुआ, आ जायेंगे।'

आखिर एक वकील मित्र से सलाह ली। एक नेताजी को बुलवाकर दूसरे नेताजी से उद्घाटन करवा लेने पर कोई फौजदारी का केस तो नहीं बनता। उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर कहा, 'चार सौ बीसी का मुकदमा नहीं बनता, पर मानहानि का केस बन सकता है।' तब हमने उन्हें सारी स्थिति समझायी। उन्होंने कहा, 'आप इसमें वाचनालय के अलावा कोई और कार्यक्रम भी जोड़ दें। जैसे कविता पाठ, या सरस्वती मा की तस्वीर पर माला चढ़ाना या दीप प्रज्ज्वलन आदि.....।' एक से उद्घाटन, दूसरे से दीप प्रज्ज्वलन। आजकल यह भी खूब चल रहा है।

कुछ सदस्यों के गते बात उतरी, कुछ के नहीं उतरी। इधर खबर

मिली कि सम्पादक जी पिछली रात से हॉस्पिटल में भर्ती हैं। ग्लूकोज की बोतलों पर चल रहे हैं। पांच दिसम्बर को पता चला, अब तो मिन्टों का खेल रह गया है। औक्सीजन पर चल रहे हैं। कार्ड बाट दिये गए थे, जिनमें मुख्य अतिथि ढक्कन लालजी थे, और जो कार्ड सम्पादक जी के नाम थे, उन्हें फाड़ फेंक कर भुला दिया गया था। 6 दिसम्बर को नेताजी ढक्कन लाल जी व्हीलर में अपना एम्पलीफायर और माइक लिए ठीक 6.00 बजे आ घमके।

‘अरे भई, क्या तैयारी चल रही है।’ यह जो मैं तो अपना ध्वनि प्रसारण साथ ले आया हूं, ‘मैया !’

‘और बेबी की शादी.....?’

‘वहां उसकी मां है ही।’

‘पर पिता.....?’

‘अरे पिता-बिता का क्या है, पिता तो सब हैं ही, उसके चाचा, ताऊ....’

उसी समय हॉस्पिटल की एम्बुलेंस आ कर रुकी। उसमें से स्ट्रेचर पर सम्पादकजी को लिए उनके दो भूतपूर्व कर्मचारी निकले। एक नर्स ग्लूकोस की बोतल लिए पीछे-पीछे आ रही थी। सदस्यों को देखकर उन्होंने प्रसन्नता और विनम्रता के साथ पूछा ‘मुझे विलम्ब तो नहीं हुआ!’



एक गर्भपात और

वो जमाने लड़ गए, जब फिल्मों में इस प्रकार का दृश्य हुआ करता था, जिसमें एक व्यग्र पति और अन्य-परिवार वाले नर्सिंग होम के बरामदे में इधर-उधर घूमते रहते थे, और तेजी से दौड़ती हुई एक नर्स हाथ में ट्रे लिए कभी ऑपरेशन थियेटर में घुसती थी, कभी बाहर निकल कर एक ओर दौड़ जाती थी। फिर एक घड़ी को दिखाया जाता था, और मां...आं...मा...आं...मा...आं...रोने की आवाज सुनाई देती। इसी के साथ ऑपरेशन थियेटर का दरवाजा खुलता, और लेडी डॉक्टर बाहर निकल कर कहती, 'बघाई हो, बच्चा हुआ है।'

अब लेडी डॉक्टर बाहर निकल कर केवल इतना ही कहेगी, 'बघाई हो, मुसीबत टल गई.....अर्थात्...!'

जी हां, परिवार नियोजन का जमाना है। और...आप समझदार हैं ही।

हमारे शहर की प्रसिद्ध दाई जन्नत बाई ने अपने जीवन में जितने जापे किये हैं, उससे कहीं अधिक उसने गर्भपात कराए हैं। इसके दो कारण हैं। एक तो जापे से अधिक एबोर्शन में कमाई है। दूसरे यह कार्य राष्ट्र हित का भी है।

लेकिन इस फैक्ट्री का प्रबन्धक वर्ग जन्नत बाई पागुदा के चरण चिन्हों पर चल कर आज सभी फैक्ट्रीयों के प्रबन्धकों से ज्यादा सफल माना और जाना जाता है।

आपातकाल में जिन सरकारी, अर्द्ध सरकारी या निजी संस्थानों के कर्मचारियों के तीन बच्चे थे, उनकी अनिवार्य नसबन्दी करवायी गयी। यह किसी से छुपा नहीं, इसलिए दोहराने वाली बात भी नहीं। ऐसे में कालूराम बन्धानी के सामने एक दिक्कत आयी थी, उसके दो कन्याएं

पहले से थीं, तीसरी सन्तान होने को थी। स्टोर्स आफिसर ने मैनेजमेन्ट पॉलिसी को शिरोधार्य करके कालूराम को नसबन्दी ऑपरेशन करवाने के लिए प्रेरित किया। कालूराम दुविधा में। यदि ईश्वर की कृपा से बच्चा हो जाए, तो क्या कहने। पर न हुआ, लड़की हो जाए तो ! यही बात उसने स्टोर्स आफिसर के आगे रखी। लेकिन स्टोर्स आफिसर प्रबन्धक वर्ग का ताबेदार ठहरा। अपने सोचने के तरीके को कैसे बदल पाता।

निराश कालूराम जन्मत बाई पासूदा के पास गया, और... कालूराम की नसबन्दी की नौबत नहीं आई। जन्मत बाई की बात मानकर कालूराम ने अपनी पत्नी को गर्भपात के लिए मनाया। पर यह बात है आपातकाल की। उसके आठ साल बाद मैनेजमेन्ट स्वयं कालूराम वाली स्थिति में आ गया।

‘उन दिनों कारखाने में एक रहस्यमय सन्नाटा छा गया था, जैसे कोई बहुत बड़ा अनैतिक कार्य हो गया हो। अब तक मजदूरों की यूनियन थी, इस यूनियन की जड़ों में मैनेजमेन्ट ही पानी-खाद डालती थी। साफ-साफ शब्दों में यह उसी की यूनियन थी, जिसमें प्रबन्धक महोदय के चरण धोकर पीने वाले नेता पदाधिकारी थे। तब तक जन्मत बाई का कोई काम न था।’

लेकिन मजदूरों के एक वर्ग ने करवट ली। हरकत में आये और दूसरे झण्डे के नीचे अपनी यूनियन बना ली। छोटे अफसर चौके, बड़े अफसर घबराए, और भी बड़े अफसर जो थे, उनका रक्तचाप बढ़ने या घटने लगा। लेकिन योग की अवस्था को प्राप्त महाप्रबन्धक महोदय स्थिर रहे। जब अधिकारियों ने दूसरी यूनियन के जन्म और विकास की तीव्र गति के बारे में (विषय में) उन्हें जानकारी दी, तो उन्होंने अमृत वचन कहे :-

‘एक और एक को ग्यारह यूँ ही नहीं कहा जाता। एक ही यूनियन होती, तब उसमें तो यह खंका फिर भी थी कि कहीं नेताओं को हटाकर दूसरे नेता नेतृत्व अपने हाथ में लेकर हमें चुनौती न देने लगे। अब तो दूसरी यूनियन बन गई है। रजिस्टर्ड हो गयी, इसलिए हमने उसे

मान्यता भी दे दी, और स्वयं निश्चित हो गये। आप भी निश्चित रहें। अब यह दोनों यूनियन एक-दूसरे की खींचतान में ही लगी रहेंगी।' और यही हुआ भी। पिछले दो साल से दोनों यूनियनों द्वारा मॅनेजमेन्ट को दिए गए मांग पत्र रिकार्डरूम की किसी फाईल में बन्द पड़े धूल चाट रहे हैं। दोनों यूनियन के नेता गेट पर अपने बहुमत को सिद्ध करने के लिए गला फाड़-फाड़ कर सिंह गर्जना कर रहे हैं। लेबर कोर्ट में मामला कछुए की चाल से आगे बढ़ रहा है। और प्रबन्धक महोदय द्राक्षासब का नियमित सेवन करके स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर रहे हैं। जन्त बाई पासूदा का अभी भी कोई रोल नहीं।

इसके बाद कुछ ऐसा हुआ कि नितांत अबोध और अनुशासित समझे जाने वाली स्टॉफ जाति में भी बगावत के संक्रामक कौटानु प्रवेश करने लगे, और कुछ जागरूक कर्मचारियों ने यूनियन बनाने की आवश्यकता अपने दूसरे साथियों को समझाना आरम्भ कर दिया। स्टॉफ नामक जीव केंचुए जैसा निरीह प्राणी होता है। वह यूनियन बनाने को मॅनेजमेन्ट के विरुद्ध विश्वासघात समझता है, या फिर नौकरी से निकाले जाने के भय से त्रस्त रहता है। ऐसे लोगों में से दो-चार व्यक्ति यूनियन बनाने की कोशिश करते रहते थे, पर अधिक सफल नहीं हो सके थे। इस बार कुछ असंतोष या अभाव की ऐसी चिंगारी दबी पड़ी थी कि सघर्ष के शोले दहकने लगे। यह आच मॅनेजमेन्ट तक पहुँची। मॅनेजर का चेहरा फक हो गया, जैसे जवान लड़की घर से भाग जाए या औरत पराए मर्द के साथ आपत्तिजनक स्थिति में देखी जाए। कानून के कीड़े लेबर आफिसर से लेकर पर्सनल डिपार्टमेन्ट के सुपरिन्टेन्डेन्ट तक चिंतामग्न हो गए।

मॅनेजर को यूनियन बनने से भय था या नहीं, ईश्वर जाने, पर आश्चर्य बहुत था। जैसे किसी सुशील स्त्री के व्यभिचारिणी होने का पहली बार पता चला हो। स्टॉफ के लोगों का यूनियन बनाने का मतलब था, मजदूरों की असंगठित लड़ाई से होने वाले लाभ का अन्त। मजदूरों में दो यूनियनें थी, मॅनेजमेन्ट चाहे तो दो की दम बनवा दे या

एक कर दे, लेकिन स्टॉफ के लोगों को बहला-फुसना नहीं सकता। या वे यूनियन बनाने से दूर रहें, या यूनियन बन गई तो बन गई। यह एक गम्भीर मार करने वाली तोप की तैयारी थी जिसकी नली मैनेजर की कुर्मी की सोप में थी।

मैनेजर साहब के इर्द-गिर्द उनके परम भक्त आफिसर घूमते रहते और पल-पल की खबर पहुंचाते रहे। कानों-कान में यह खबर भी पहुंची कि नेता लोग मैनेजमेन्ट द्वारा की गई स्टॉफ वर्ग की उपेक्षा और आफिसर्स को दी जाने वाली अनेकानेक सुविधाओं से क्षुब्ध हैं। इस असंतोष की जड़ें कितनी गहरी थी, कि यूनियन की सदस्यता का फॉर्म सबसे पहले 15 से 20 वर्ष की सर्विस वाले पुराने कर्मचारियों ने भरा। बाकी लोग भी भरने लगे, तब मैनेजमेन्ट ने व्यक्तिगत स्तर पर एक-एक नेता को अपने कान्फ्रेंस हॉल में बुलाया, और...वहां जन्नत बाई के फार्मूले को काम में लिया गया।

इस अभियान को अभी सवा महीना ही हुआ था, इस से अधिक उपयुक्त अवसर अब कभी नहीं मिलने वाला था, इसलिए मैनेजर ने नेताजी से उनकी व्यक्तिगत शिकायतें और अभियोग सुनकर निकट भविष्य में उन्हें दूर करने का आश्वासन दिया।

छोटे नेताजी का बेटा बी० ए० पाम किए देकारी का शिकार था। उसको नौकरी में लगाने की आशा दिलायी। दो सक्रिय कार्यकर्ताओं में से एक को स्कूटर खरीदने के लिए 8000 रुपये का दिलाना मंजूर हुआ, और दूसरे को वो घुड़की दी गई कि छठी का दूध याद आ गया। इस प्रकार साम-दाम-दण्ड-भेद के सदियों सिद्ध फार्मूले को आजमाया गया। इसके बाद उन उत्साही कार्यकर्ताओं को बहुत दिनों तक लोगों ने सड़क पर नहीं देखा, जैसे कोई अविवाहित युवती गर्भवती हो जाए तो घर के बाहर नहीं निकलती। जेप कर्मचारी आपस में ढूंढते-पूछते रहे कि शर्मा जी कहां गए, खत्री जी कहां गए, गुप्ता जी कहां गए, पर कोई नहीं बता सका, उनके बाल-बच्चे या ऊपर वाले कोई नहीं, कोई भी नहीं बता सका। किसी ने खबर दी, इन सभी नेताओं को सेठ जी ने दिल्ली बुलाया है। किसी ने कहा, स्टोर्स आफिसर्स के साथ उदयपुर का

'दारा' करन गए हैं। गर्ज यह कि कुछ दिनों बाद दफ्तर में वे चारों नेता अवतरित हुए और अपने काम में जुट गए।

जन्मत बाई पासूदा के घर से लौटते समय कालूराम को जितनी प्रसन्नता हुई थी, उससे अधिक प्रबन्धक महोदय को हुई थी, जिन्होंने संघर्ष की मुहिम का एक और गर्मपात करवा दिया था, और सेठ जी के परम विशिष्ट भक्तों में अपना नाम लिखाने की सफलता प्राप्त कर ली थी। पुरुषों के लिए किमी पद पर विवाहित होने की शर्त नहीं होती। लेकिन... प्रबन्धक का पद जरूर ऐसा है, जिसमें उसका यूनियन उत्पत्ति में असमर्थ होना वांछनीय है। यदि उसके पद पर रहते किसी भी दिन यूनियन का जन्म हो जाए तो प्रबन्धक की शामत आ जाती है। इसके लिए जिस प्रकार एक कामी परन्तु बूढ़ा पति अपनी पत्नी के चरित्र पर सन्देह करता है, और एक दो गुप्तचर व्यक्ति पीछे लगा देता है उसी प्रकार सुरक्षा विभाग का सारा जमावड़ा इसी बात का पता लगाने के लिए होता है कि कहीं यूनियन फोर्स में तो नहीं आ रही है। उसके लिए हमारे मैनेजर ने बड़े नायब नुस्खे तैयार किये हैं। श्री राम जयन्ती, श्री कृष्ण जयन्ती, महावीर जयन्ती, नव वर्ष समारोह, होली-मिलन, दीपोत्सव और उत्पादन दिवस आदि के नाम पर साल में 5-6 ऐसे कार्यक्रम होते हैं, जिसमें रंगारंग कार्यक्रमों की आड़ में श्रम संगठनों का विकृत रूप प्रस्तुत करके उन्हें उत्पादन को नुकसान पहुंचाने वाले श्रमिक विरोधी स्वार्थी तत्व सिद्ध किया जाने वाले गीत, कविता, नाटक और प्रहसन आदि का कार्यक्रम होता है।

हर विभाग को एक बार वन-विहार के लिए ले जाया जाता है। जहाँ प्रबन्धक वर्ग और श्रमिकों के सम्बन्धों में घनिष्ठता में श्रम संगठन की निरर्थकता की बात आम मजदूरों के दिमाग में भर दी जाती है। यह सब इसलिए कि इससे प्रबन्धक वर्ग को पता चलता रहता है कि... कोई यूनियन वाली बात अभी पैदा नहीं हुई। ऐसे में कभी यूनियन बनने का माहौल पैदा होता है तो, लाला को प्रबन्धकों के पौरुष पर उगलियां उठाने की नीयत आ जाती है और तब हमारे प्रबन्धक भाग-दौड़ कर जन्मत बाई के फार्मूले को काम में लेकर वही सब करते हैं, जो कभी कालूराम को करवाना पड़ा था। □

परिचय



नाम : सुरेश कुमार शर्मा

जन्म स्थान : मालावाड़ (राजस्थान)

शिक्षा : स्नातकोत्तर (वाणिज्य)

व्यवसाय : कोटा के एक कारखाने में नौकरी

पूर्व व्यवसाय : भारतीय जल सेना में नाविक

अन्य कृतियाँ : 'पहल' (उपन्यास)

विश्व विजय पाकेट बुक द्वारा प्रकाश्य

'परिप्रेक्ष्य' (कथा संग्रह)